



महात्मा गांधी का सन्देश

संकलन और सम्पादन
यू० एस० मोहनराव



सत्यमेव जयते

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

अक्टूबर 2, 1969 (10 आश्विन, 1891)

महात्मा गांधी की जन्म शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित

महात्मा गांधी के लेखों के अंशों को नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद की
अनुमति से उद्धृत किया गया है ।

मूल्य : 2 60

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-1, द्वारा प्रकाशित
और टूडे एण्ड टूमारोस प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, फरीदाबाद, द्वारा मुद्रित

विषय-सूची

भूमिका	1
1 केवल ईश्वर है	18
2 मृत्यु और अहिंसा	26
3 विश्वास और सिद्धान्त	39
4 सब धर्मों की आत्मा एक है	49
5 दरिद्रनारायण	59
6 राष्ट्र के हित के लिए	75
(क) भारत का लक्ष्य क्या है ?	75
(ख) भारत एक राष्ट्र है	78
(ग) मेरे सपनों का भारत	83
(घ) लोकतन्त्र	91
(ङ) अस्पृश्यता	98
(च) नारी समाज /	103
(छ) राष्ट्रभाषा	109
(ज) विद्यार्थियों से	114
7 व्यक्ति की भलाई के लिए	119
8 मानव परिवार	130
सहायक सामग्री	133

राष्ट्रपति भवन
नई दिल्ली-4
2 सितम्बर, 1968

मुझे यह जानकारी प्रसन्नता हुई कि श्री यू० एस० मोहनराव ने “महात्मा गांधी का सन्देश” के सम्बन्ध में एक सकलन का सम्पादन किया है। इस सकलन को तैयार करते हुए सकलनकर्त्ता का उद्देश्य और प्रयत्न यह रहा है कि महात्मा गांधी के सन्देश के दोनों पहलुओं को अर्थात् जीवन के समग्र आदर्शों के रूप में और स्वाधीनता संग्राम के दिनों में अनुयायियों को दिए हुए निर्देशों के रूप में सही ढंग से प्रस्तुत किया जाए। आशा है कि इससे पाठकों को पता चलेगा कि गांधीजी के ये उपदेश उस समय के लिए उपयुक्त होने के साथ-साथ ऐसा जीवन-दर्शन भी प्रस्तुत करते हैं, जिसका सभी समय और सभी परिस्थितियों में स्थायी महत्व है। ‘बीस वर्ष बाद’ विषय की प्रचुर सामग्री का नए सिरे से अध्ययन करके जो अंश संकलित किए गए हैं, उनका चयन और क्रम इस प्रकार से है जिससे गांधीजी के लेखों के प्रसिद्ध तथा कम प्रसिद्ध दोनों ही प्रकार के अंश, प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत किए जा सकें। मुझे आशा है कि इनको व्यापक रूप से पढ़ा जाएगा।

—जाकिर हुसैन

भूमिका

इस लघु मकलन की मामग्री गाधीजी के बहुमध्यक लेखों तथा भाषणों में चुनी गई है। स्वाधीनता संग्राम के समय गाधीजी अपने अनुयायियों को निरन्तर यह बनाने रहे कि उन्हें क्या करना चाहिए और क्या नहीं। इन निर्देशों के रूप में उन्होंने जीवन के जादुओं का सर्वांगीण रूप में प्रतिपादन किया। इस मकलन में संग्रहकर्ता का उद्देश्य गाधीजी के इसी सन्देश या जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करना है। आशा है कि इसमें पाठकगण यह अनुभव करेंगे कि यह सन्देश उस समय के लिए उपयुक्त होने के साथ ही साथ ऐसा जीवन-दर्शन भी प्रतिपादित करता है जो सभी समय तथा परिस्थितियों के लिए सार्थक है। प्रचुर गाधी साहित्य का 'वीम चर्प वाद' मथन करके जो अंग सफलित किए गए हैं, उनको इस ढंग में रखा गया है जिसमें गाधी साहित्य के प्रसिद्ध तथा कम प्रसिद्ध दोनों प्रकार के अंग प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत किए जा सकें।

विभिन्न कारणों से आज यह धारणा व्याप्त हो गई है कि यद्यपि गाधीजी महान जननेता तथा मत थे, किन्तु राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षा तथा सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में उनके विचार अस्पष्ट और पुरातनपन्थी हैं तथा विज्ञान और टेक्नोलोजी की आज की तेजी से बदलने वाली दुनिया में उनकी सार्थकता नहीं है।

गाधीजी के लेखों का अध्ययन करके तथा उनकी शिक्षाओं का तत्व समझने से मालूम होगा कि यह धारणा कितनी गलत है। मानव इतिहास में महान सन, दार्शनिक, विचारक, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ तथा राजनीतिक नेता हुए हैं। लेकिन गाधीजी इन सब में निराले थे क्योंकि उन्होंने जहाँ अपने देशवासियों को विदेशी शासन में मुक्ति दिलाने के लिए जन आन्दोलन का सक्रिय नेतृत्व किया वहाँ उन्होंने व्यक्तिगत तथा राजनीतिक, इन दोनों अर्थों में स्वराज की परिक्ल्पना की और मनन तथा परीक्षण के द्वारा ऐसे जीवन-दर्शन को विकसित करने की कोशिश की जिसका स्थायी महत्व है। सामाजिक समस्याओं के जो समाधान

उन्होंने मुझाए वे इतने सरल थे कि लोग अकसर चकित रह जाते थे और बहुत-से लोग उनके सफल होने में सन्देह करते थे ।

गांधी शताब्दी ने गांधीजी के जीवन तथा उनकी शिक्षाओं के बारे में विश्वव्यापी दिलचस्पी पैदा कर दी है । उनका अच्छी तरह अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि उनका दृष्टिकोण आदर्शवादी था तथापि अपने आदर्शों को मूर्त रूप देने में वे बहुत व्यावहारिक थे, सत्य तथा अहिंसा जैसे आधारभूत सिद्धान्तों में अटूट विश्वास रखते हुए भी, वे उनको लागू करने में निरन्तर परीक्षण और प्रयोग करते थे और उनकी व्यवहार की कसौटी पर कसते थे, और उनके प्रयोगों व निष्कर्षों को अन्तिम नहीं मान लेना चाहिए बल्कि और आगे परीक्षण करके उन्हें सुधारा भी जा सकता है ।

संक्षेप में, गांधीजी एक समाज-विज्ञानी थे जिन्होंने समाज की बुराइयों का विश्लेषण करके तथा उन बुराइयों से सम्बन्धित सभी तथ्यों तथा व्यक्तियों को ध्यान में रखकर उनका हल निकालने की कोशिश की । उनके विचारों के सम्बन्ध में यदि कोई बात कही जा सकती है तो यही कि वे अपने समय से आगे हैं और सम्भवतः इसी कारण वे अव्यावहारिक प्रतीत हो सकते हैं ।

केवल ईश्वर है

सकलित सामग्री को आठ भागों में विभाजित किया गया है । प्रथम भाग में गांधीजी के ईश्वर सम्बन्धी विचारों तथा ईश्वर के अस्तित्व में उनके अटूट विश्वास का विवेचन किया गया है 'ईश्वर है, सदा से है और सदा रहेगा ।' उनके लिए ईश्वर कोई बाह्य सत्ता नहीं, बल्कि वह मानव हृदय में हमेशा विद्यमान रहता है । सारे ब्रह्माण्ड का परिचालन करने वाले एक चेतन तत्व में विश्वास के बिना जीवन की पूर्णता असम्भव है । ईश्वर में विश्वास के बिना मनुष्य महामागर से अलग एक बूढ़ के समान है, जिसका विनाश अवश्यम्भावी है । यदि हम चेतन ईश्वर में विश्वास करते हैं तो हमारा कल्याण होगा । 'जो चीज मनुष्य को सही काम करने के लिए प्रेरित करती है वही ईश्वर है । विश्व में जो कुछ भी चेतन तत्व है उनका योग ईश्वर है ।'

गांधीजी की शक्ति का सबसे बड़ा स्रोत ईश्वर में उनका यही पूर्ण विश्वास था । उनका विश्वास था कि मैं ईश्वर के हाथों में एक छोटा-सा उपकरण हूँ और

ईश्वर ही जानते हैं कि मृज से कैसे और क्या काम लिया जाए । उनको जितनी भी परीक्षाओं से गुजरना पड़ा, उसमें उनका ईश्वर में विश्वास दृढतर होता गया । वे कहते थे—‘ऐसा कभी नहीं हुआ कि ईश्वर ने मेरी पुकार न सुनी हो । जेलों में कठिन परीक्षा की घड़ियों में जब चारों ओर अधिकार प्रतीत होता था, उस समय मैंने उसे अपने सबसे निकट पाया है । मुझे अपने जीवन में एक भी ऐसा क्षण याद नहीं है जब मुझे ऐसा लगा हो कि ईश्वर ने मेरा हाथ छोड़ दिया है ।’

सत्य और अहिंसा

गांधीजी के दो मूल मिद्धान्त—सत्य और अहिंसा—को हमारे भाग में प्रस्तुत किया गया है । ये दोनों मिद्धान्त उनके एक-एक विचार, शब्द तथा कार्य में पूर्ण रूप में व्यक्त होते हैं । सत्य में अपनी पूर्ण निष्ठा को शब्दों में व्यक्त करके ही वे चुप नहीं बैठे । मन-कर्म-वचन में उन्होंने सत्य की साधना की और विश्व के समक्ष उन्होंने यह घोषित किया कि ‘सत्य ही ईश्वर है’ । यद्यपि अपने देश को वे जी-जान में प्यार करते थे, तथापि उसकी भी स्वतन्त्रता वे सत्य की बलि देकर नहीं चाहते थे । ‘भारत सत्य की बलि देकर स्वतन्त्रता प्राप्त करे, इसकी अपेक्षा मैं यही पसन्द करूँगा कि वह नष्ट हो जाए ।’

सत्य तथा अहिंसा एक-दूसरे में पृथक् नहीं किए जा सकते । वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं । जैसे सत्य का पूर्ण रूप से पालन किए बिना अहिंसा की सिद्धि नहीं हो सकती, वैसे ही सत्य के साधक को अहिंसा का मार्ग अपनाना पड़ता है । ‘हमारे जीवन का आधार हिंसा तथा असत्य नहीं बल्कि अहिंसा तथा सत्य है ।’ इसलिए हर एक व्यक्ति को चरम सत्य की सिद्धि के लिए विवेकपूर्वक अहिंसा का (जो हमारे अन्दर निहित है) अपनाना चाहिए । ‘मैं पिछले पचास सालों से कहता आ रहा हूँ कि अहिंसा के इस मिद्धान्त को विवेकपूर्वक स्वीकार करना चाहिए तथा पूरे उत्साह के साथ उसका पालन करना चाहिए ।’ अहिंसा से गांधीजी का अभिप्राय केवल यही नहीं था कि किसी को चोट न पहुँचाई जाए । वह इसे मात्र निषेध नहीं बल्कि विश्वप्रेम का प्रेरक मिद्धान्त समझते थे ।

अतः चाहे व्यक्ति हो अथवा राष्ट्र, सबकी मुक्ति अहिंसा के मार्ग पर ईमान-दारीपूर्वक चलने में है, यह मार्ग केवल ऋषियों अथवा सत्तों के लिए नहीं बरन् सर्वसाधारण के लिए भी है ।

उन्होंने इस सिद्धान्त को बिल्कुल अस्वीकार कर दिया कि साध्य की प्राप्ति के लिए कोई भी साधन उचित है। भावना की पवित्रता ही काफी नहीं है, साधनों का पवित्र होना भी जरूरी है। जिस अहिंसा का गांधीजी ने जीवन भर उपदेश दिया और उस पर सफलतापूर्वक अमल किया, उसे वे निर्वलता अथवा लाचारी नहीं समझते थे। अहिंसा वीरता की पराकाष्ठा है। उसमें कायरता अथवा निर्वलता के लिए कोई स्थान नहीं है। वे कायरता की अपेक्षा हिंसा को ज्यादा अच्छा समझते हैं 'क्योंकि एक हिंसापूर्ण व्यक्ति से यह आशा की जा सकती है कि वह किसी दिन अहिंसक बन जाएगा पर एक कायर से ऐसी आशा कदापि नहीं की जा सकती।'

उनके जीवन तथा शिक्षाओं से जो बात हमें सीखनी है, वह यह है कि किसी भी व्यक्ति को दूसरे के प्रति बुरी अथवा शत्रुतापूर्ण भावना नहीं रखनी चाहिए। किसी भी व्यक्ति को शत्रु नहीं समझना चाहिए। उसके अन्दर जो बुराई है उसके विरुद्ध हमें संघर्ष करना चाहिए और उसको समाप्त कर देना चाहिए।

गांधीजी व्यक्ति की नैतिकता तथा समाज एवं राष्ट्र की नैतिकता में कोई फर्क नहीं मानते थे। यदि व्यक्तियों के बीच हिंसा अच्छी नहीं है तो राष्ट्रों के बीच भी उतनी ही बुरी है। सत्याग्रह में, जो सत्य और अहिंसा पर आधारित है, अत्याचारी या विरोधी को कोई हानि नहीं पहुंचाई जाती। विजय होने पर न तो हार का लाछन और न जीत का दंभ अनुभव किया जाता है।

गांधीजी का प्रेम तथा कष्ट सहने की शक्ति में सचमुच गहरा विश्वास था। अपने विरोधी के दृष्टिकोण को अपने अनुरूप बनाने का सबसे अच्छा तथा प्रभावकारी तरीका है समझा-बुझाकर तथा शराफत के साथ उसके विचारों को बदलना न कि जोर-जबदस्ती करके। अतः सत्य के प्रचार के लिए दूसरों को दण्डित करना गलत होगा, पर जिस कार्य को हम ठीक समझते हैं उसके लिए स्वयं कष्ट सहना उचित होगा। जब कोई व्यक्ति स्वयं कष्ट सहन करता है तो वह अपने विचारों के प्रति ईमानदारी का परिचय देता है। इस तरीके का एक और लाभ यह है कि यदि हम गलती पर हैं तो इससे हमें अपनी गलती को सुधारने में मदद मिलती है। अतः अहिंसा का तरीका जनतन्त्र का तरीका है।

हिंसा के अन्तर्गत कोई वास्तविक सुरक्षा नहीं होती। उसमें या तो शस्त्रीकरण की होड़ लग जाती है अथवा ज्यादा शक्तिशाली सशस्त्र गुटों पर

निर्भरता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। अहिंसा के अन्तर्गत जो शक्ति आती है वह कष्ट सहन करने की इच्छा से आती है और वह भौतिक साधनों पर निर्भर नहीं रहती। छोटा-से-छोटा सामाजिक समूह भी, चाहे वह कितना ही अमहाय प्रतीत होता हो, इस शक्ति को प्राप्त कर सकता है। 'जिम तरह हिंसा के प्रशिक्षण से जान लेने की कला सीखनी पड़ती है उसी तरह अहिंसा के प्रशिक्षण से जान देने की कला सीखनी होती है।' जिम तरह युद्ध का लक्ष्य होता है प्रतिपक्षी को दण्डित करना जिमसे वह भय के कारण विजेता की इच्छा का पालन करे उसी तरह मत्याग्रह का लक्ष्य होता है गलत कार्य करने वाले का हृदय-परिवर्तन करना और एक नई तथा ज्यादा न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था की स्थापना के लिए उसका समर्थन प्राप्त करना। 'अहिंसक लड़ाई का लक्ष्य हमेशा समझौता होता है, न कि यह कि विजेता विजित पर अपनी शर्तों को लादे अथवा प्रतिपक्षी को नीचा दिखाया जाए।'।

एक अहिंसक सेना में वे सब लोग शामिल हो सकते हैं जो अहिंसा के फलितार्थों को स्वीकार करते हैं और उनका पालन करने का अधिकाधिक प्रयत्न करते हैं। 'ऐसी सेना कभी नहीं होगी जो पूर्ण रूप से अहिंसक लोगों की बनी हो। वह ऐसे लोगों को लेकर बनाई जाएगी जो अहिंसा का ईमानदारी के साथ पालन करने का प्रयाम करेंगे।'।

गांधीजी को अपने द्वारा संगठित मत्याग्रह आन्दोलनों के समय, एक विशाल देश में चारों ओर फैले हुए स्त्री-पुरुषों का नेतृत्व करना पड़ा। उन्हें नियंत्रित करना तथा अहिंसा के पथ पर चलने के लिए प्रशिक्षित करना सरल काम नहीं था। 'फिर भी जिम तरह उन्होंने गांधीजी के मार्गदर्शन के अनुकूल आचरण किया वह एक अचम्बे की बात है।'।

मन्य और अहिंसा पर आधारित मत्याग्रह इस मान में नई चीज है कि सामाजिक तथा राजनीतिक अन्यायों को दूर करने के निमित्त बड़े पैमाने पर इसके प्रयोग का प्रयाम मानव इतिहास में पहली बार किया गया। इसके प्रशिक्षण की विशालता को देखते हुए उसकी कुछ अवस्थाओं अथवा स्थानों में गलतियाँ होना अनिवार्य था। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि यह परीक्षण ही असफल हो गया है और उसे छोड़ देना चाहिए।

विश्वास और सिद्धान्त

‘विश्वाम और सिद्धान्त’ शीर्षक तीसरा अनुभाग अधिकांश रूप से आत्मकथात्मक है। ‘मेरा जीवन एक अविभाज्य इकाई है और मेरे सारे कार्यकलाप एक सूत्र में गुथे हैं और उन सबका स्रोत मानवता के प्रति मेरा असीम प्रेम है।’ तुच्छ-से-तुच्छ जीव को अपने बराबर समझ कर प्यार करते हुए भी गांधीजी न तो कोई देवता और न कोई पैगम्बर होने का दावा करते थे। वे केवल एक विनम्र सत्यान्वेषी थे और सत्य को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध थे। उनका जीवन सत्य की प्राप्ति के लिए—अमूर्त सत्य नहीं, बल्कि ऐमा सत्य जिसका आचरण व्यवहार में हो सकता है—एक अनवरत माधना थी। ‘और मैं अपनी माधना में अपने सभी साथी साधकों पर पूर्ण रूप से भरोसा करके उन्हें अपनी सारी बातें बतलाता हूँ ताकि मैं अपनी गलतियों को जान सकूँ और उन्हें सुधार सकूँ।’

उनकी समूची जीवन-यात्रा सत्य की ओर कठिनाइयों से भरी हुई चढ़ाई थी और हर कदम पर उनकी दृष्टि व्यापक होती गई और अन्ततः वे अतिमानव-से प्रतीत होने लगे। यदि उनके जीवन तथा विचारों ने लाखों-करोड़ों स्त्री-पुरुषों को प्रेरणा दी है तो इसका कारण यह था कि उनका जीवन एक खुली पुस्तक के समान था। उनके जीवन में कोई बात गुप्त न थी और न वे ऐसी बातों को प्रोत्साहन ही देने थे।

अटूट मत्यानुराग उनके जीवन का सबसे बड़ा आयुध था। और इसी में वे लोगों के दिल और दिमाग पर इतना गहरा प्रभाव प्राप्त कर सके। इसी मत्यानुराग के कारण वे साधन की पवित्रता पर जोर देते थे और इसी वजह से वे पूर्वनिर्धारित लक्ष्यों से चिपके नहीं रहते थे। उन्मी अनुराग के कारण वे अपनी हिमालय-भी बड़ी अथवा तिल-सी छोटी गलतियों को भी सार्वजनिक रूप से स्वीकार कर लेते थे।

असत्य का एक रूप है अन्याय। ‘यही कारण है कि सत्य के प्रति लगाव की वजह से मैं राजनीति के क्षेत्र में उतरा हूँ। और मैं बिना किसी हिचक के और फिर भी पूर्ण विनम्रता के साथ कह सकता हूँ कि जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं है, वे धर्म का अर्थ नहीं समझते।’

अतः गांधीजी के लिए धर्म तथा नैतिकता में कोई अन्तर नहीं था। वे दोनों एक ही थे। ऐसा होना स्वाभाविक था क्योंकि गांधीजी मुख्यतः एक कर्मयोगी

थे। धार्मिक कार्यकलाप को जीवन के अन्य कार्यकलापों से पृथक् नहीं किया जा सकता।

सब धर्मों की आत्मा एक है

यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपने धर्म के प्रति जितना आदर भाव रखता है उतना ही वह दूसरे धर्मों के प्रति भी रखे क्योंकि 'धर्मों' का उद्देश्य एक-दूसरे के बीच अलगाव नहीं बल्कि एकता उत्पन्न करना है।' यह चौथे अनुभाग का संदेश है। गांधीजी ने कहा था कि 'मृत्यु किसी एक ही धार्मिक ग्रंथ की सम्पत्ति नहीं है।'।

गांधीजी का हिन्दुत्व, रामायण के नीतिशाम्भ तथा उपनिषदों एवं भगवद्-गीता के तत्व पर आधारित था। इन्हीं बुनियादी शिक्षाओं के अनुरूप उन्होंने अपने जीवन को ढाला। उनका मत था कि अच्छे कामों से बुद्धि शुद्ध होती है जिसके फलस्वरूप ईश्वर का दर्शन होता है। 'मैं मानवता की सेवा के माध्यम से ईश्वर का दर्शन करने का प्रयास कर रहा हूँ क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि ईश्वर न तो आकाश में है, न पाताल में, बल्कि वह सब में व्याप्त है।'।

यद्यपि गांधीजी मन्त्रे हिन्दू थे तथापि उन्होंने अन्य धर्मों के ग्रंथों का आदर के साथ अध्ययन किया। इस्लाम के भ्रातृभाव की तरह 'मरमन आन दि माउण्ट' की उच्च नैतिकता भी उनके जीवन का एक अंग बन गई थी। और इसी तरह बौद्ध धर्म का प्रेम, विनय तथा शांति का संदेश भी।

सभी धर्म सार्वभौम हैं, इस सत्य की उन्होंने बारम्बार घोषणा की और इस मृत्यु पर उन्होंने अपने जीवन में सचमुच अमल किया और उसे सही मिठ कर दिया।

परिणामतः उन्हें 'धर्म परिवर्तन' के प्रयासों से घृणा थी। बल्कि उन्होंने कहा, 'हमें हिन्दू को बेहतर हिन्दू बनने में, मुसलमान को बेहतर मुसलमान बनने में तथा ईसाई को बेहतर ईसाई बनने में अवश्य सहायता करनी चाहिए। हमें अपने अन्दर इस छिपे हुए दम को निकाल देना चाहिए कि हमारा धर्म ज्यादा सच्चा है और दूसरे का कम। अन्य सब धर्मों के प्रति हमारा रख बिल्कुल स्पष्ट तथा ईमानदारी का होना चाहिए।'।

गांधीजी का विश्वास था कि प्रार्थना धर्म की आत्मा तथा सार है। अतः

प्रार्थना मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए क्योंकि यही एक माध्यम है जिससे हमारे दैनिक जीवन में अनुशासन तथा सतुल्यता आता है।

दरिद्रनारायण

‘दरिद्रनारायण’ शीर्षक पाचवे भाग का विषय है गांधीजी की गरीबी तथा दलितों के लिए चिन्ता तथा उनकी स्थिति सुधारने के लिए उपाय। कष्ट-पीडित जनता के प्रति उनकी करुणा के पीछे न तो वटपन या मेहरवानी का भाव था और न भावुकता का। गांधीजी की यह करुणा आम जनता के साथ उनके पूर्ण तारात्म्य से उत्पन्न हुई थी जिसका परिणाम यह हुआ कि वे उनकी निरन्तर चिन्ता करते तथा उनके लिए कार्य करते रहे।

उनका यह पूर्ण विश्वास था कि गरीबी अधिकांश लोगों की किस्मत में अनिवार्य रूप से नहीं बदी है। उनका आदर्श यह था कि सम्पत्ति का वितरण उसके उत्पादकों में न्यायपूर्वक किया जाना चाहिए। कोई भी ऐसा किसान अथवा श्रमिक नहीं होना चाहिए जिसे जीवन की आवश्यक वस्तुएँ—भोजन, कपड़ा तथा रहने के लिए मकान न उपलब्ध हों। साधारण जनता को ये आवश्यक वस्तुएँ अवश्य मिलनी चाहिए।

वे किसी भी प्रकार के शोषण के खिलाफ थे। वे अपने चारों ओर जो आर्थिक विषमता तथा सामाजिक अन्याय देखते थे उसको दूर करने के लिए उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी।

उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा कर दी कि मैं विदेशी तथा देशी पूँजीवाद में किसी तरह का अन्तर नहीं मानता। चूंकि वे अहिंसा में पूर्ण आस्था रखते थे, अतः वे पूँजीपतियों का अस्तित्व मिटाने के विरुद्ध थे। फिर भी वे पूर्ण रूप में यह मानते थे कि शोषण समाप्त होना ही चाहिए। यह तभी सम्भव है जबकि पूँजीपति अपने को श्रमिकों का न्यासी या ट्रस्टी समझे। उनके अनुसार ‘श्रमिक अपनी मिलों के वैसे ही मालिक हैं जैसे कि हिस्सेदार, और जब मिल-मालिक यह समझने लगेंगे कि श्रमिक भी मिल के उतने ही मालिक हैं जितने कि वे स्वयं, तब उनके बीच कोई झगडा नहीं रह जाएगा।’ वे लोगों की स्थिति में समानता लाना चाहते थे। ‘श्रमिक वर्ग डूँधर कई शताब्दियों से पृथक् तथा निम्न स्थिति में रखा गया है। उनको यह समझना चाहिए कि श्रम भी पूँजी है। जब श्रमिक समुचित रूप से

शिक्षित तथा मगठिन हो जाएंगे और अपनी ताकत को ममझने लगेंगे तब उन्हें पूजा की ताकत द्वारा भी दबाया न जा सकेगा।' उनका मत था कि चूँकि पूजा तथा श्रम एक-दूसरे पर निर्भर होते हैं अतः उनमें मधर्ष का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। आवश्यकता इस बात की है कि 'पूजीपति श्रमिकों पर रोव न जमाए।'।

यदि धनिक पूजीपति, न्यायी की तरह नहीं काम करते और गरीब श्रमिकों का शोषण करते ही रहते हैं तो क्या किया जाए? इसका सही तथा अच्छा उत्तर है सत्याग्रह। अहिंसक तरीके से पूजीपति नहीं, बल्कि पूजीवाद नष्ट होगा क्योंकि पूजीपति अपने को उन लोगों का न्यायी समझेगा जिन पर वह अपनी पूजा के निर्माण, संरक्षण तथा वृद्धि के लिए निर्भर है।

गांधीजी का मत था कि दान या खैरान लेने वाले तथा देने वाले दोनों का नैतिक पतन होता है।

गांधीजी यंत्रों के खिलाफ नहीं थे। वे 'मशीनों के पोछे पागल होने' के खिलाफ थे। वे कहते थे, 'मैं विज्ञान के ऐसे हर आविष्कार की प्रशंसा करता हूँ जो सबके लिए हितकर हो।' पर वे ऐसे यंत्रों के खिलाफ थे जिनसे श्रमिक बेकार हो जाते हैं और शक्ति थोड़े-से ही लोगों में केन्द्रित हो जाती है। और वे मशीनों की अन्धाधुंध वृद्धि के भी विरुद्ध थे। 'मशीन की दिखावटी विजय' से वे प्रभावित नहीं होते थे।

किन्तु वे "मार्वाजनिक उपयोग की उन वस्तुओं के लिए, जो मानव श्रम से नहीं तैयार की जा सकती" भारी मशीनों की आवश्यकता को अवश्य समझते थे। लेकिन समाजवादी होने के नाते वे इस बात पर जोर देते थे कि उन सब भारी उद्योगों का, जिनमें बहुत बड़ी मश्या में लोग काम करते हैं, या तो राष्ट्रीयकरण होना चाहिए या राज्य द्वारा उनका नियन्त्रण होना चाहिए। वे जनता के हित के लिए चलाए जाने चाहिए।

"ईश्वर ने मनुष्य को काम करके पेट भरने के लिए बनाया और कहा कि जो लोग बिना काम किए खाना खाते हैं वे चोर होते हैं। रस्किन की 'जण्टु दिम लास्ट' नामक पुस्तक पढ़ने के बाद गांधीजी ने जो धारणा बनाई थी वह टालस्टाय के 'श्रम द्वारा रोटी' सम्बन्धी लेखों में पुष्ट हो गई। इसके पक्ष में और प्रमाण उन्हें भगवद्गीता के तीसरे अध्याय में मिला जिसमें कहा गया है कि जो व्यक्ति बिना यज्ञ किए खाता है वह चोरी का भोजन करता है। गांधीजी ने इसकी व्याख्या

यह की कि प्रस्तुत सन्दर्भ में 'यज्ञ' का अर्थ शारीरिक श्रम अथवा 'श्रम द्वारा रोटी' ही हो सकता है। सभी मनुष्यों को चाहे उनकी जो भी रुचि-वृत्ति तथा योग्यता हो 'श्रम द्वारा रोटी' कमाने के मिद्धान्त का पालन करना चाहिए। यह जीवन का नियम है और व्यक्ति के स्वास्थ्य, सुख तथा सतोष के लिए आवश्यक है। उनका कहना था कि हमारी बहुत-सी वर्तमान सामाजिक बुराइयों का कारण यह है कि हम इस नियम का पालन नहीं करने।

यह कहा जा सकता है कि लाखों-करोड़ों लोगों के लिए जीवन का अर्थ केवल मेहनत करना और आधा पेट भोजन करना रह गया है। इस स्थिति का वास्तविक कारण यह है कि वे 'श्रम द्वारा रोटी' के नियम का स्वेच्छापूर्वक पालन नहीं करते। जब 'श्रम द्वारा रोटी' के नियम का पालन जबरदस्ती कराया जाता है तब गरीबी, बीमारी तथा असतोष उत्पन्न होते हैं। यह गुलामी की स्थिति होती है। इस नियम का जब स्वेच्छापूर्वक पालन किया जाता है तब सतोष तथा स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। और स्वास्थ्य ही सच्चा धन है। 'कोई भी व्यक्ति चाहे वह लखपति-करोड़पति ही क्यों न हो कुछ न कुछ शारीरिक श्रम अथवा व्यायाम के बिना नहीं रह सकता।' इस प्रकार यदि हर एक व्यक्ति को, चाहे वह अमीर हो या गरीब, किसी न किसी रूप में श्रम करना ही है तो क्यों न उसे उत्पादक श्रम यानी 'रोटी के लिए श्रम' का रूप दिया जाए? उन्होंने वचन तथा कर्म दोनों के जरिए श्रम के महत्व पर जोर दिया और वे किसी भी ऐसे श्रम को, जो सामाजिक दृष्टि से उपयोगी होता है, नीचा नहीं समझते थे।

राष्ट्र के हित के लिए

यद्यपि गांधीजी सम्पूर्ण मानवता के प्रति सद्भावना रखते थे तथापि अपनी जन्मभूमि के प्रति उनका विशेष लगाव था। भारत उन्हें इसलिए प्रिय था क्योंकि उसने युगों में कुछ सनातन सत्यों को व्यक्त किया है। छोटे भाग का विषय यही है और उस भाग को फिर कई अनुभागों में बांटा गया है जो इस विषय के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित हैं।

भारत एक राष्ट्र है

गांधीजी इस देश को एकता के मूल में बांधने वाले महान राष्ट्रनायक थे। उन्होंने कहा कि यहाँ रहने वाले लोग चाहे जिस धर्म के अनुयायी हों, सबका

घर भारत ही है, सब इसके बराबरी के साझीदार हैं, यहाँ की महान परम्पराओं के सभी समान उत्तराधिकारी हैं, सबके अधिकार, सबके कर्तव्य समान हैं। धर्म, ईश्वर और मनुष्य के बीच की व्यक्तिगत वस्तु है। “राष्ट्रीयता की दृष्टि से सभी लोग पहले और अन्त में भारतीय हैं, चाहे उनका निजी धर्म कुछ भी हो।” उनकी मृत्यु भी उनके विशाल हृदय की सहिष्णुता और समदर्शिता की प्रतीक थी।

उन्होंने स्पष्ट चेतावनी दी कि प्रान्तों के भाषावार पुनर्गठन को भारत की जीवन्त एकता के मार्ग में बाधक नहीं बनना चाहिए। “यदि प्रत्येक प्रान्त अपने आपको एक अलग, प्रभुसत्ता-मम्पन्न इकाई मानने लगेगा तो भारत की स्वतन्त्रता का कोई मतलब ही नहीं रह जाएगा, बल्कि उसकी स्वतन्त्रता के साथ-साथ उन इकाइयों की भी स्वतन्त्रता समाप्त हो जाएगी।” बाहर की दुनिया हमें गुजराती, महाराष्ट्री, तमिल आदि के रूप में नहीं बल्कि भारतीय के रूप में जानती है। “इसलिए हमें विभाजक और विभेदकारी तत्वों को दृढ़ता से निरुत्साहित करना चाहिए और अपने को भारतीय समझना और भारतीयों की तरह व्यवहार करना चाहिए।” उन्हें स्वस्थ ढंग की प्रान्तीयता स्वीकार थी, अन्यथा अलग-अलग राज्यों का कोई मतलब ही नहीं था। “लेकिन हमारी प्रान्तीयता को मकुचित और एकांगी नहीं होना चाहिए। उसे सम्पूर्ण देश के हित का माधक होना चाहिए, क्योंकि आखिरकार ये प्रान्त देश के हिस्से ही तो हैं। प्रान्त जो कुछ भी करे, वह सम्पूर्ण राष्ट्र के गौरव के निमित्त होना चाहिए।”

मेरे सपनों का भारत

गांधीजी देश के करोड़ों लोगों की गरीबी और दुर्दशा को देखकर व्यथित थे और उन्होंने अपनी सारी शक्ति उनकी अवस्था सुधारने में लगा दी। वे चाहते थे कि इस देश के करोड़ों लोगों के जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी होनी चाहिए और स्वतन्त्र भारत में उत्तम जीवन बिताने के अवसर और स्वतन्त्रता के वरदान सबको समान रूप से मिलन चाहिए।

गांधीजी का निश्चित मत था कि भारत शहरों में नहीं, सात लाख गावों में है। भारतीय किमानों में उनकी अडिग आस्था थी। वे उन्हें धरती के सपूत और लोकतन्त्र के आधार-स्तम्भ मानते थे।

गांधीजी शहरो और नगरो की तेजी से होने वाली वृद्धि और विकास को देखकर बहुत चिन्तित थे। इसे वे अस्वस्थ प्रवृत्ति मानते थे। शहरो को गावो का शोषण करते देखकर वे बहुत दुखी होते थे और सीधे-सादे ग्रामीणजनो के प्रति शहरो में पले बुद्धिजीवियों की दम्भपूर्ण कर्तव्यता को देखकर उनका मन बहुत व्यथित होता था। उनका दृढ़ विश्वास था कि अगर भारत को सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करनी है तो यह स्वीकार करना होगा कि जनसाधारण शहरो में नहीं, गावो में, महलो में नहीं, झोपड़ियों में ही रहेगा। “करोड़ो लोग शहरो और महलो में कभी भी एक-दूसरे के साथ शांति से नहीं रह सकेंगे। उस अवस्था में तो उन्हें हिंसा और असत्य का ही सहारा लेना होगा।” सत्य और अहिंसा पर ग्राम जीवन की सादगी के बीच ही पूर्णतः अमल किया जा सकता है।

गांधीजी के अनुसार, हमारे देश की विशालता, इसकी इतनी बड़ी आबादी, इसकी भौगोलिक स्थिति और जलवायु, सबने इसे ग्रामीण सभ्यता के ही उपयुक्त बनाया है। आज इस सभ्यता में अनेक दोष हैं, लेकिन ये ऐसे हैं जिन्हें दूर करने के लिए, यदि कटिबद्ध होकर प्रयत्न करना है तो नई पीढ़ी के अधिक शिक्षित लोगो को ग्राम जीवन अपनाना होगा और ग्रामीण भाइयो और बहनो को मिथाना होगा कि वे “अपने स्वास्थ्य की रक्षा कैसे कर सकते हैं, अपने समय तथा धन का कैसे सदुपयोग कर सकते हैं।” हम वर्षों से उनका शोषण करते रहे हैं। फलतः हमारे गाव आज वरवाद हो गए हैं। “भारत के प्रत्येक देश-भक्त के सामने आज यही कर्तव्य है कि वह गावो की इस वरवादी को रोके, दूसरे शब्दों में यह कि वह भारतीय गाव का पुनर्निर्माण करे ताकि सबके लिए गाव में रहना सहज सम्भव हो सके।”

उन्होंने बड़ी व्यथा के साथ देखा कि ग्रामीण लोग भी—ग्रामीणों में जो लोग पढ़े-लिखे हैं, वे भी शहरी जीवन के प्रलोभन में पड़ गए हैं और गावो को छोड़कर शहरो में जा रहे हैं। इसलिए उन्होंने अपना ध्यान ग्रामीण शिल्प उद्योग के पुनरुद्धार पर केन्द्रित किया ताकि गाव आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी बन सकें। उनका विचार था कि ग्रामीण लोग अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शहरो पर नहीं बल्कि गावो पर ही निर्भर करना सीखें।

उन्होंने स्पष्ट देखा कि शहरो में जो धन-वैभव है वह गरीब ग्रामवासियों

के शोषण का परिणाम है। "मैं खुद ही ग्रामीण हू इसलिए मैं गावों की दशा से भली-भांति परिचित हू। मैं ग्राम जयशंकर को जानता हू। आपने सब कहता हू कि ऊपर वालों का भार नीचे वालों को कुचल रहा है। सबसे ज़रूरी बात यही है कि उनके कंधों में अपना यह भार उतार लीजिए।"

इसीलिए उन्होंने चर्खा और खादी को इतना अधिक महत्व दिया। चर्खा कुछ लोगों को शायद हास्यास्पद आर्थिक साधन प्रतीत हो। यदि गांधीजी ने भारतीय ग्रामवासियों की जीविका के लिए चर्खों को एकमात्र साधन बनाया होता तो यह हास्यास्पद भी हो सकता था। लेकिन उन्होंने ऐसा कभी नहीं कहा। उनका उद्देश्य चर्खों को कृषि के महायुक्त उद्योग के रूप में उसके प्राचीन स्थान पर पुनः प्रतिष्ठित करना था। ताकि जूत खेती-बारी का काम न चल रहा हो, तब लोग कताई का काम करें। गांधीजी ने कहा कि चर्खों के बल पर ग्रामवासी अपनी स्वल्प आय में कुछ वृद्धि कर सकते हैं और अपने कपड़ों के खर्च में कुछ बचत भी।

अंग्रेजों के भारत में आने से पहले कनाई उद्योग मारे देश में फूल-फल रहा था। किन्तु अंग्रेजों ने यहाँ आकर अपने आर्थिक स्वार्थ में प्रेरित होकर उसे नष्ट कर दिया। गांधीजी अब उस उद्योग का पुनरुद्धार करना चाहते थे। गांधीजी के लेखों यह पुनरुद्धार एक भूले-बिसरे और पुराने धन्धे को पुनरुज्जीवित करना नहीं था। इसे तो वे एक स्वाभाविक, व्यावहारिक और सुलभ धंधा मानते थे, जिसके द्वारा करोड़ों लोग अपनी आय में कुछ वृद्धि कर सकते थे और साथ ही देश के धन को बाहर जाने में रोक सकते थे।

"मेरे लिए तो खादी भारतीय मानवता की एकता, इसकी आर्थिक स्वतन्त्रता एवं समानता का प्रतीक है, और इसलिए जवाहरलाल नेहरू के काव्यमय शब्दों में खादी भारत की स्वतन्त्रता की वर्दी है।"

लोकतन्त्र

सच्ची स्वतन्त्रता के फल का उपभोग करने के लिए हमें आत्मानुशासन के मर्म को समझना चाहिए। 'आत्मानुशासन सामूहिक स्वतन्त्रता की पहली शर्त है।' अनुशासन, सहिष्णुता और एक-दूसरे के प्रति सम्मान के भाव के बिना लोकतान्त्रिक जीवन-पद्धति असम्भव है। "सबसे सच्ची और पूर्ण स्वतन्त्रता वही है जिसमें

सबसे अधिक अनुशामन और विनम्रता है। जन्मजात लोकतन्त्रवादी, जन्मजात अनुशामनवादी भी होता है।”

गांधीजी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का महत्व स्वीकार करते थे। परन्तु उनका कहना था कि मनुष्य चूँकि एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए उसे अपनी इस स्वतन्त्रता का प्रयोग बहुत ही मयम के साथ करना चाहिए। वैयक्तिक स्वतन्त्रता के नाम पर अराजकता और उच्छृंखलता विलकुल गलत और लोकतन्त्र के विरुद्ध है। “यह तो स्वतन्त्रता के बिनाग का रास्ता है।”

“यदि हम लोकतन्त्र की सच्ची भावना का विकास करना चाहते हैं तो असहिष्णुता को सर्वथा त्याग देना होगा। असहिष्णुता का मतलब कि हमें अपने उद्देश्य की सच्चाई में विश्वास नहीं है। असहिष्णुता तो स्वयं ही एक प्रकार की हिंसा है और सच्ची लोकतांत्रिक भावना के विकास में बहुत बड़ी बाधा है। हमें अपने विरोधी की बात सुनने को सदा तत्पर रहना चाहिए। यह तो आवश्यक है ही कि हम अपने विश्वासों और मान्यताओं के अनुसार निर्भय होकर काम करें, किन्तु “हमें अपना दिमाग बराबर खुला रखना चाहिए और अपनी धारणा गलत सिद्ध हो तो इसे स्वीकार करने से हिचकना न चाहिए। इस प्रकार दिमाग को बराबर खुला रखने से हमारे अन्दर जो सत्य है उसे बल मिलता है और यदि उसमें कोई दोष होता है तो वह दूर हो जाता है।” कोई भी सही निर्णय के एकाधिकार का दावा नहीं कर सकता। हमसे गलती होने की सम्भावना बराबर बनी रहती है और अक्सर हमें अपने पहले के मतों या निर्णयों में परिवर्तन करने को बाध्य होना पड़ता है। यद्यपि व्यक्तियों और समुदायों को अपने हार्दिक विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता और अवसर मिलना ही चाहिए किन्तु स्वयं अपने प्रति और दूसरों के प्रति ईमानदारी बरतने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने विरोधी के दृष्टिकोण को भी समझने की कोशिश करें और यदि हम उसे स्वीकार न कर सकें तो कम से कम उसके दृष्टिकोण को उतना आदर तो दें ही जितने आदर की अपेक्षा हम उससे अपने दृष्टिकोण के लिए रखते हैं।”

गांधीजी के अनुसार असत्य और हिंसात्मक उपायों से सच्चा लोकतन्त्र कायम नहीं किया जा सकता। “लोकतन्त्र की भावना किमी पर ऊपर से थोपी नहीं जा सकती। इसे तो व्यक्ति के हृदय से विकसित होना चाहिए।” लोकतन्त्र

मे सबसे निर्बल व्यक्ति को भी उतना ही अवसर मिलना चाहिए जितना कि सबसे सबल व्यक्ति को मिलता है। "और यह अहिंसा के बिना असम्भव है। दुनिया का कोई भी देश आज किसी कमजोर देश का खयाल नहीं करता केवल शान दिखाता है।

अस्पृश्यता

अस्पृश्यों के लिए गांधीजी के दिल में सबसे ज्यादा दर्द था। उन्हें उन्होंने हरिजन कहा और हरिजनों की उन्होंने सबसे अधिक सेवा की। अस्पृश्यता-निवारण उनके जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण ध्येय हो गया। "मैं जो चाहता हूँ, जिसके लिए मैं जी रहा हूँ और जिसके लिए अपने प्राण उत्सर्ग कर देने में मुझे खुशी होगी वह है अस्पृश्यता का समूल विनाश।" उनका विचार था कि जब हमारा समाज अदोगति में पड़ा हुआ था, तभी यह जहर उसमें फैल गया होगा, और तब से यह बुराई आज तक बनी हुई है।

जिन मन्दिरों में हरिजनों का प्रवेश वर्जित था उनमें जाने से उन्होंने भी इनकार किया।

नारी समाज

नारी समाज के लिए आदर का भाव गांधीजी के चरित्र का एक मुख्य गुण था। वे नारी को त्याग और बलिदान की प्रतिमूर्ति मानते थे। "अहिंसा का मतलब है असीम प्रेम और असीम प्रेम का अर्थ है कष्ट महने की असीम क्षमता। इस क्षमता का सबसे अधिक परिचय नारी — पुरुष की जननी — ही देती है।" उनका खयाल था कि हिन्दू संस्कृति में एक दोष यह रहा है कि उसने "पत्नी को पति की दासी के स्थान पर ला रखा है और पत्नी द्वारा अपना समस्त अस्तित्व पति में विलीन कर देने पर आग्रह किया है। परिणामतः पति कभी-कभी पत्नी के अधिकारों को इस तरह हड़प लेता है और उस पर इतना रोव जमाता है कि वह वास्तव में पशु के समान बन जाता है।"

स्त्रियों के अधिकारों के सम्बन्ध में गांधीजी कोई समझौता करने को तैयार नहीं थे। उनका विचार था कि पत्नी के मार्ग में ऐसा कोई भी कानूनी व्यवधान नहीं होना चाहिए जो पति के मार्ग में न हो। पुत्री और पुत्र के साथ सर्वथा समान व्यवहार करना चाहिए।

राष्ट्रभाषा

गांधीजी का दृढ़ मत था कि स्कूलों और कालेजों में शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषाएँ होना चाहिए और हिन्दी को राष्ट्रीय सम्पर्क की भाषा के रूप में अपनाना चाहिए। उन्होंने घोषणा की कि “भरल हिन्दी और उर्दू का मिश्रण” हिन्दुस्तानी ही आम जनता की भाषा हो सकती है और यह भारतीयों के लिए सबसे उपयुक्त अन्तर-प्रान्तीय भाषा होगी। “यदि सभी मेरा साथ छोड़ दें, तब भी हिन्दुस्तानी पर मेरा आग्रह रहेगा।”

विद्यार्थियों से

विद्यार्थियों के लिए गांधीजी का कहना था कि वे देश के प्रति अपने कर्तव्य को समझे। अपने आचरण में पवित्रता लाए। अनुशासन में रहें। चाहे जैसी भी परिस्थिति हो झूठ मत बोलो। किसी बात को छुपाओ मत, अपने अध्यापकों तथा बड़ों पर भरोसा करके उन्हें हर एक बात सच-सच बतलाओ। किसी के प्रति दुर्भावना मत रखो, किसी के पीछे पीछे उमकी बुराई मत करो, सबसे बड़ी बात यह है कि ‘तुम स्वयं अपने प्रति सच्चे बने रहो’।

व्यक्ति की भलाई के लिए

भलाई की वृत्ति हममें बराबर रहती है। जरूरत सिर्फ इस बात की है कि हम सही उपायों से उसका विकास करें। इस सकलन के सातवें अनुभाग में कहा गया है कि, “सबसे बड़ा धर्म यह है कि हम मानव जाति की भलाई के लिए अथक प्रयत्न करते रहें।” मानव की निस्वार्थ सेवा जीवन का सबसे उदात्त उद्देश्य है। हमें यह समझना चाहिए कि हमारी निजी भलाई का दूसरों की भलाई से अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जो दूसरों की सेवा में अपना जीवन बिताता है उसे अपने और अपनी सुख-सुविधा के बारे में सोचने का समय ही कहा मिलेगा? “यदि हम इस तथ्य को हृदयगम कर लें कि हममें कुछ दिव्य तत्व है, तो हम दुनिया में ईश्वर के अलावा और किसी से नहीं डरेंगे।” इस बात की अनुभूति हमें जीवन की समस्याओं का सामना विनम्रता और निर्भयता से करने की क्षमता प्रदान करेगी।

गांधीजी यह मानते थे कि शारीरिक सुख-सुविधा एक हद तक तो ठीक है, लेकिन "शारीरिक आवश्यकताओं, बल्कि बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति की भी एक सीमा होनी चाहिए और इन्हे इतना नहीं बढ़ने देना चाहिए कि ये शारीरिक और बौद्धिक विलासिता का रूप ले ले।" "मन तो एक अशांत पक्षी के समान है। इसे जितना अधिक मिलता है, इसकी मांग उतनी ही बढ़ती जाती है। मगर तब भी वह अमृतुष्ट ही रहता है।" मनुष्य का मच्चा सुख तो सतोष में ही है।

इसलिए उन्होंने ब्रह्मचर्य पालन को सर्वाधिक महत्त्व दिया। इसकी परिभाषा उन्होंने इन शब्दों में की—“यह वह आचरण है जो मनुष्य को ईश्वर के सम्पर्क में ले जाता है। इसका मतलब होता है अपनी सभी इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण। यही इस शब्द का मच्चा और सगत अर्थ है। “उन्होंने कहा कि आदर्श स्थिति तो यही है कि पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन किया जाए।” यदि आप में इतना साहस नहीं तो वैशक विवाह कीजिए, किन्तु विवाहोपरान्त भी आत्मसंयम का जीवन व्यतीत कीजिए।”

मानव परिवार

गांधीजी के जीवन और उनकी शिक्षाओं का सारे समार के लिए महत्त्व है। उनकी शक्ति धार्मिक और नैतिक शक्ति थी और उन्होंने मनुष्य की अन्तरात्मा को जागृत किया। उन्होंने धर्म, राष्ट्र अथवा जातियों के बीच कोई भेद नहीं किया। वे एक महान विश्वप्रेमी थे। वे ममस्त मानव समाज और सभी राष्ट्रों की तात्त्विक एकता में विश्वास रखते थे। आठवें और अन्तिम भाग में वे कहते हैं—“ईश्वर ने मुझे भारत की जनता के बीच जन्म दिया है। इसलिए यदि मैं उसकी सेवा न करूँ तो अपने स्रष्टा के प्रति अपराध करूँगा। यदि मैं उसकी सेवा नहीं कर सकता तो फिर अखिल मानवता की सेवा भी मुझ से नहीं हो सकती। और जब तक मैं अपने देश की सेवा करते हुए अन्य राष्ट्रों का अपकार नहीं करता तब तक मैं सही रास्ते पर हूँ।”

उनके अहिंसा-दर्शन में किसी भी व्यक्ति अथवा राष्ट्र के लिए किसी सम्पदा पर एकाधिकार रखने की गुंजाइश नहीं थी। अगर भारत उनका कार्य और सेवा-क्षेत्र था तो इसलिए कि वे यह मानते थे कि एक दिन वह दुनिया को आत्म-त्याग का सच्चा मार्ग दिखाएगा।

1 केवल ईश्वर है

कोई ऐसी अव्यक्त, परिभाषातीत, रहस्यमयी शक्ति है, जो विश्व के कण-कण में व्याप्त है। मुझे उसकी प्रतीति होती है, यद्यपि मैं इसे देख नहीं पाता। यही वह अदृश्य शक्ति है जिसके प्रभाव का अनुभव तो होता है, पर जो किसी प्रमाण की पकड़ में नहीं आती। कारण यह है कि मैं अपनी इन्द्रियों के जरिए जिन चीजों का अनुभव कर पाता हूँ, यह उन सबसे सर्वथा भिन्न है। यह बुद्धि से परे है, लेकिन एक सीमा तक ईश्वर के अस्तित्व को बुद्धि के धरातल पर भी मिट्टी किया जा सकता है।

मुझे एक आभास-सा होता है कि इस सतत परिवर्तनशील और नाशवान विश्व के पीछे कोई ऐसी चेतन शक्ति है, जो स्वयं अपरिवर्तनशील है, जो कण-कण को एक सूत्र में बाँधे हुए है, जो सृजन, सहार और नव-सृजन करती है। वही सर्वज्ञ शक्ति ईश्वर है। और चूँकि केवल अपने इन्द्रिय ज्ञान के बल पर मैं जितनी भी वस्तुओं की प्रतीति कर पाता हूँ, वे सभी नाशवान हैं, इसलिए वास्तव में अगर किसी का अस्तित्व है तो ईश्वर का ही है, वही सत्य है।

अब प्रश्न यह है कि यह शक्ति मंगलकारी है अथवा अमंगलकारी ? मुझे तो वह पूर्णतया मंगलकारी ही लगती है। कारण, मुझे यह दिखाई देता है कि मृत्यु के बीच जीवन, अमृत्य के बीच सत्य और अन्धकार के बीच प्रकाश अपना अस्तित्व बनाए रहता है। इसी से मैं यह निष्कर्ष निकालता हूँ कि ईश्वर जीवन, सत्य और प्रकाश स्वरूप है। वह प्रेम है, वह परम शिव तत्त्व है।

ईश्वर वह परिभाषातीत तत्त्व है जिसका हम अनुभव तो करते हैं, किन्तु जिसको जानते नहीं। मेरे लिए ईश्वर सत्य और प्रेम है, वह नीति और सदाचार है, वह निर्भीकता है। वह प्रकाश और जीवन का स्रोत है, फिर भी वह इन सबसे ऊपर और परे है। ईश्वर हमारे अन्तरात्मा है, बल्कि नास्तिकों की नास्तिकता भी वही है। —वह वाणी और बुद्धि से परे है। —जो उसे मगुण रूप में पूजना चाहते हैं, उनके लिए वह मगुण है, जो उसका स्पर्श चाहते हैं उनमें माकार है।

वह विगुद्धतम तत्त्व है। वास्तव में वह उन्हीं के लिए है, जिनका उममें विश्वास है। वह सब के लिए सब कुछ है। वह हम सब में है, फिर भी हम सबसे परे है—वह बड़ा महिष्णु है। वह बड़ा वैर्यवान है, लेकिन साथ ही बड़ा भयकर भी है।—उसके मामले अज्ञान का बहाना नहीं चल सकता। किन्तु, साथ ही, वह सतत क्षमाशील भी है, क्योंकि वह हमें मदा प्रायश्चित्त करने का अवसर देता है। वह दुनिया का सबसे बड़ा लोकतन्त्रवादी है, क्योंकि वह हमें मत् और असत् में, अच्छाई और बुराई में से, अपनी इच्छानुसार जिसे चाहे, उसे चुन लेने की आजादी देता है। साथ ही वह सबसे बड़ा अत्याचारी भी है, क्योंकि वह अक्सर हमारे मन की साध पूरी होते-होते उममें विघ्न डाल देता है और कर्म की स्वतन्त्रता के नाम पर वह हमारे लिए वास्तव में इतनी कम स्वतन्त्रता छोड़ता है कि हम उमके उपहास का विषय बन कर रह जाते हैं।—इसीलिए हिन्दू धर्म में इस समस्त विश्व व्यापार को उसकी लीला माना गया है।

जो ईश्वर ऐसा हो कि जिसके अस्तित्व को उसी के द्वारा बनाए गए प्राणी प्रमाण द्वारा सिद्ध कर सके वह वास्तव में ईश्वर नहीं होगा। हा, जो लोग सम्पूर्ण चित्त से उसकी उपासना में रत रहते हैं, उन्हें वह कठिन से कठिन परीक्षा में से सफल होकर निकलने की शक्ति अवश्य देता है। लगभग आधी सदी से भी अधिक समय से मैं इस कठोर भालिक का विनीत सेवक रहा हूँ। जैसे-जैसे समय बीतता गया है, उसका स्वर मेरे लिए अधिकाधिक स्पष्ट होता गया है। कठिन से कठिन अवसरों पर भी उमने मेरा साथ नहीं छोड़ा है। मैं जब कुमार्ग की ओर प्रवृत्त हुआ हूँ, तब उमने अक्सर मुझे बचाया है और अन्ततः मेरी समस्त इच्छाएँ उसी के अधीन हो गई हैं। मैंने अपने आपको उसके प्रति जितना अधिक समर्पित किया है, मेरा आनन्द उतना ही बढ़ता गया है।

प्रकृति के ऐसे बहुत-से व्यापार हैं जिनके आधार पर आप तर्क से भी ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध कर सकते हैं, लेकिन मैं उसके अस्तित्व का वैसा कोई तार्किक प्रमाण देकर आपकी बुद्धि का अपमान नहीं करना चाहता। इसके बजाय मैं तो यह चाहूँगा कि आप इन तार्किक प्रमाणों को एक तरफ रख दें और उसमें भोले बालक के जैसा विश्वास रखना शुरू कर दें। अगर मैं हूँ तो ईश्वर अवश्य है। उसके अस्तित्व में विश्वास मेरे अपने अस्तित्व का आधार है, और ऐसा अकेले मेरे ही साथ नहीं, करोड़ों अन्य लोगों के साथ भी है।

जिस व्यक्ति ने एक बार ईश्वर की आवाज सुन ली है, वह कभी उससे विमुख नहीं हो सकता । ठीक वैसे जैसे कोई तैरना सीखकर उसे कभी नहीं भूलता है । उसकी आवाज सुनने से लोगो के जीवन में दिन-प्रतिदिन सद्गुणो की वृद्धि होनी चाहिए ।

उसकी आवाज को तभी सुना जा सकता है जब व्यक्ति में सुनने की योग्यता हो और सुनने की यह योग्यता निरन्तर और धैर्यपूर्वक प्रयत्न करने तथा ईश्वर में लीन रहने से प्राप्त होती है । शंकराचार्य ने इस प्रक्रिया की तुलना दूब की नोक जैसी पतली नली से समुद्र को खाली कर देने की प्रक्रिया से की है । इसलिए यह प्रक्रिया या साधना अनन्त है—जन्म-जन्मान्तर तक चलने वाली । फिर भी सास लेने या पलके झपकाने की क्रियाओ की तरह प्रभु को पाने का प्रयत्न सहज स्वाभाविक रूप से किया जाना चाहिए । ये क्रियाएँ अनजाने ही चलती रहती हैं । यह प्रयत्न जीवन क्रिया के साथ-साथ चलना चाहिए । अतएव, मैं आपसे कहूँगा कि आप यह ईश्वर से साक्षात्कार की शाश्वत क्रिया जारी रखे, क्योंकि यही आपको ईश्वर से मिला सकती है ।

शरीरधारी प्राणियो के रूप में हमारा अस्तित्व क्षणिक है । काल के अनन्त चक्र में सौ साल की क्या विसात है ? लेकिन यदि हम अहं की शृंखला को तोड़ कर अपने आपको अखिल मानवता के साथ एकाकार कर देते हैं तो हम उसकी गरिमा के भागी बनते हैं । ऐसा मानना कि हम कुछ हैं, अपने और ईश्वर के बीच दीवार खड़ी करना है । हम कुछ नहीं हैं, यही मानना ईश्वर में लीन होना है । समुद्र में पड़ी बूद अपने जनक समुद्र की महानता की भागीदार होती है, यद्यपि खुद उसे इस महानता का भान नहीं रहता । लेकिन, समुद्र से अलग होते ही वह बूद सूख जाती है । अतः इस उक्ति में कोई अतिरजना नहीं है कि जीवन पानी के बुलबुले के समान है ।

सेवामय जीवन अपनाने के लिए नम्र होना आवश्यक है । जो दूसरो के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर सकता है, उसे दुनिया में अपने लिए स्थान ढूँढने की फुरसत कहा ? मगर आलस्य को विनय नहीं मान लेना चाहिए, जैसा कि हिन्दू धर्म में हुआ है । मच्चि विनय का मतलब मानवता की सेवा के लिए सतत कठोरतम श्रम में लगे रहना है । ईश्वर मतलब क्रियाशील रहता है । वह क्षण भर को भी विश्राम नहीं करता । यदि हम उसकी सेवा करना चाहते हैं या उसमें लीन

होना चाहते हैं तो हममें भी उसी के समान अविश्रान्त कर्मशीलता होनी चाहिए । समुद्र से अलग हुई वृद्ध को भले ही क्षणभर का विश्राम मिल जाता हो, लेकिन जो वृद्ध समुद्र में पड़ी हुई है, उसके लिए विश्राम नहीं है । क्योंकि स्वयं समुद्र भी तो विश्राम का नाम नहीं जानता । ऐसी ही स्थिति हमारी है । ज्यों ही हम ईश्वररूपी समुद्र से एकाकार होते हैं, हमारे लिए विश्राम की कोई सम्भावना नहीं रह जाती, बल्कि मच तो यह है कि तब हमें उसकी आवश्यकता भी नहीं रह जाती । हमारी निद्रा भी कम होती है, क्योंकि हम मन में ईश्वर का विचार लेकर सोते हैं । यही अविश्रान्ति परम विश्रान्ति है । मन के अन्दर मदा मची रहने वाली यह उथल-पुथल अक्षय शांति का स्रोत है । सम्पूर्ण समर्पण की इस अवस्था का शब्दों में वर्णन करना कठिन है, किन्तु यह मनुष्य के अनुभव से परे नहीं है । इसे अनेक श्रद्धावान् आत्माओं ने प्राप्त किया है और हम भी प्राप्त कर सकते हैं ।

जीवन का उद्देश्य, नि सन्देह, स्वयं को पहचानना है । जब तक हम सम्पूर्ण चेतन जगत के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करना नहीं सीख लेते, तब तक हम स्वयं को नहीं पहचान सकते । इस जीवन का मतलब है ईश्वर । इसीलिए हमें सबके अन्दर निवास करने वाले ईश्वर की अनुभूति करना आवश्यक है । इस ज्ञान को प्राप्त करने का साधन नि स्वार्थ भाव से सतत सेवा करते जाना है ।

मैं इस उक्ति में पूरा विश्वास करता हूँ कि ईश्वर की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता ।

बुराई के अस्तित्व का मैं कोई ऐसा कारण नहीं बता सकता जिसे बुद्धि में समझा जा सके । वैसा करने की इच्छा करना तो ईश्वर का समकक्ष बनने की आशा करना है । इसलिए मैं तो नम्रतापूर्वक बुराई की सत्ता स्वीकार करता हूँ । और मैं ईश्वर को अतिसहिष्णु और धैर्यवान् भी तो इसीलिए मानता हूँ कि वह दुनिया में बुराई के अस्तित्व को भी सहन करता है । मैं जानता हूँ कि उसमें कोई बुराई नहीं है, फिर भी अगर बुराई है तो उसका स्रष्टा वही है, यद्यपि वह स्वयं उससे परे, उससे अच्छा है ।

मैं यह भी जानता हूँ कि अगर मैं प्राणों तक की वाजी लगाकर बुराई के खिलाफ संघर्ष न करूँ तो मुझे ईश्वर का ज्ञान कभी नहीं होगा । मेरे तुच्छ और सीमित अनुभवों ने मेरे इस विश्वास को दृढ़ बनाया है । मैं जितना शुद्ध बनने की कोशिश करता हूँ, उतनी ही ईश्वर के साथ निकटता का अनुभव करता हूँ । आज जब

मुझ में नाममात्र की श्रद्धा है, तब तो ऐसी स्थिति है, लेकिन जब मेरी श्रद्धा हिमालय की भाँति अचल और उमके शिखर पर चमकने वाली हिमराशि के समान शुद्ध और दैदीप्यमान हो उठेगी, तब मैं उसके माथ कितनी अधिक निकटता का अनुभव करूँगा ? जब तक वह स्थिति नहीं आती तब तक मैं कार्डिनल न्यूमैन के स्वर में स्वर मिला कर यही प्रार्थना करता हूँ

हे दयामय ज्योति, चतुर्दिक् छाए अन्धकार में, तू मुझे राह दिखा ।

रात अन्धेरी है और मैं घर से दूर हूँ । तू मुझे राह दिखा ।

तू मेरे पैरों को दृढ़ता दे,

मैं दूर नहीं देखना चाहता,

मेरे लिए तो एक कदम ही काफी है ।

ससार में मैंने ईश्वर को सबसे अधिक कठोर स्वामी पाया है । वह हमारी कड़ी से कड़ी परीक्षा लेता है । और जब हम देखते हैं कि हमारी श्रद्धा हमारा साथ छोड़ रही है या हमारा शरीर हमारा माथ नहीं दे रहा है और हम डूबने-से लगते हैं तब वह किमी न किसी तरह हमारी मदद को पहुँच जाता है । और यह दिखा देता है कि हमें अपनी श्रद्धा नहीं छोड़नी चाहिए, क्योंकि वह हमेशा हमारी पुकार पर आने को तैयार रहता है, लेकिन हमारी शर्तों पर नहीं, बल्कि अपनी शर्तों पर ।

ईश्वर महान और परम दयालु है । वह अपने सेवकों की ऐसी परीक्षा नहीं लेता, जिसे वे सह न सकें ।

जीवन पथ में हमारे सामने धर्म सकट आता ही रहता है जब सही निर्णय करना कठिन होता है । और यह कठिनाई सबसे बड़ी तब होती है जब शैतान का स्वर लगभग ईश्वर की आवाज जैसा लगता है । ऐसी अवस्था में ईश्वर में सम्पूर्ण आस्था और पूर्ण शुद्धि तथा अत्यन्त नम्रता हमें सही रास्ता दिखा सकती है ।

वचन में मुझे ईश्वर के सहस्रनाम (विष्णु-सहस्र नाम) का जप करना सिखाया गया था । लेकिन इन सहस्रनामों में ईश्वर की पूरी नामावली समाप्त नहीं हो जाती । हम जानते हैं, और मेरे विचार से यह सत्य भी है कि जितने प्राणी हैं, ईश्वर के उतने ही नाम हैं । और इसलिए हम ईश्वर को अनाम कहते हैं । और चूँकि ईश्वर के अनेक रूप हैं, इसलिए उमें हम अरूप कहते

है। इसी तरह चूँकि वह हममें असह्य जिह्वाओं के द्वारा बान करता है, इस लिए हम उसे अवाक् मानते हैं, इत्यादि-इत्यादि। इसी तरह जब मैंने इस्लाम का अध्ययन शुरू किया तब मुझे पता लगा कि इस्लाम में भी ईश्वर के अनेक नाम हैं।

जो लोग कहते थे कि ईश्वर प्रेम है उनके स्वर में स्वर मिलाकर मैं भी कहता था कि ईश्वर प्रेम है। परन्तु अपने हृदय की गहराई में मैं यही कहता था कि ईश्वर प्रेम-रूप तो होगा ही, पर मनुष्य में अधिक तो वह मत्स्य-रूप ही है। यदि मनुष्य के लिए ईश्वर का सम्पूर्ण वर्णन करना सम्भव हो तो मैं तो इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ईश्वर मत्स्य है। दो वर्ष पूर्व एक कदम और आगे बढ़कर मैंने कहा था कि ईश्वर न केवल मत्स्य-रूप है बल्कि मत्स्य ही ईश्वर है। 'ईश्वर मत्स्य है' और 'मत्स्य ही ईश्वर है', इन दोनों बातों का मूढ भेद आप समझ लेंगे। इस निष्कर्ष पर मैं मत्स्य की पचास वर्षों तक अनवरत और कठिन माधना करने के बाद ही पहुँचा हूँ। इसके बाद मुझे पता चला कि मत्स्य तक पहुँचने का निकटतम मार्ग प्रेम ही है। परन्तु, मैंने यह भी पाया कि कम से कम अंग्रेजी भाषा में 'लव' (प्रेम) शब्द के अनेक अर्थ हैं, और उसका विषय-वस्तु वाला रूप मनुष्य के पतन का भी कारण बनता है। मैंने यह भी देखा कि अहिंसा के अर्थ में प्रेम के पुजारियों की सख्या दुनिया में बहुत थोड़ी है। लेकिन मत्स्य के दो अर्थ लगाए जाते हैं यह मैंने कहीं नहीं देखा और नास्तिकों तक ने मत्स्य की आवश्यकता या शक्ति को अस्वीकार नहीं किया है। परन्तु मत्स्य की खोज की अपनी धुन में उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को भी अस्वीकार करने में सकोच नहीं किया है—और ऐसा करके अपनी दृष्टि में उन्होंने ठीक ही किया है। इस तरह सोचने पर ही मैंने देखा कि ईश्वर सत्य है, ऐसा कहने के बजाय यह कहना चाहिए कि मत्स्य ही ईश्वर है। ————— 'ईश्वर मत्स्य है,' ऐसा कहने में एक दूसरी कठिनाई यह है कि ईश्वर का नाम करोड़ों लोग लेते रहे हैं और उसके नाम पर अकथनीय अत्याचार करते रहे हैं। वैसे सचाई तो यह है कि मत्स्य के नाम पर भी वैज्ञानिक लोग बड़ी क्रूरता करते हैं। ————— फिर, हिन्दू तत्त्वज्ञान में एक और चीज है, वह यह कि केवल ईश्वर है, उसके अलावा और किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। इसी मत्स्य को इस्लाम के कलम में जोरदार तरीके से कहा गया है। उसमें साफ-साफ कहा गया है कि सिर्फ अल्ला ही है। उसके अलावा और कुछ नहीं है।

अमल में सस्कृत में सत्य के लिए जो शब्द है—‘सत्’ —उसका शब्दार्थ ही होता है—“जो है ।” इस कारण से तथा कई अन्य कारणों से ही मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ईश्वर की यह परिभाषा कि ‘सत्य ही ईश्वर है,’ मेरे लिए सबसे अधिक सतोपजनक है । और जब आप सत्य को ईश्वर के रूप में पाना चाहते हैं तब उसका एकमात्र अनिवार्य साधन प्रेम अर्थात् अहिंसा ही है । और चूँकि मैं मानता हूँ कि साधन और साध्य समानार्थक शब्द हैं, इसलिए मुझे यह कहने में सकोच नहीं कि ईश्वर प्रेम है ।

फिर सत्य क्या है ? प्रश्न तो कठिन है, किन्तु मैंने अपने लिए उसका हल निकाल लिया । वह यह है कि जो तुम्हारी अन्तरात्मा की आवाज कहे वही सत्य है । इस पर आप पूछेंगे तब लोग एक-दूसरे से भिन्न सत्यों की कल्पना कैसे करते हैं ? इसका उत्तर यह है कि मानव मन असंख्य माध्यमों के द्वारा काम करता है और मानव मन का विकास प्रत्येक मानव में एक-सा नहीं हुआ है, इसलिए यह परिणाम तो होगा ही कि जो एक के लिए सत्य हो वह दूसरे के लिए असत्य हो । इसलिए जिन लोगों ने सत्य के प्रयोग किए हैं, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इन प्रयोगों में कुछ शर्तों का पालन करना अनिवार्य है ।

आजकल प्रत्येक व्यक्ति यम-नियम का पालन किए बिना अन्तःकरण की आवाज सुनने का दावा करता है । यही कारण है कि ससार में आज इतना अधिक असत्य प्रस्तुत किया जा रहा है । इसलिए मैं आपसे सच्ची नम्रता के साथ इतना ही निवेदन कर सकता हूँ कि सत्य की प्राप्ति ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं हो सकती, जिसमें अतिशय नम्रता न हो । यदि आप सत्यरूपी समुद्र में तैरना चाहते हैं तो आपको अपने अहं को सर्वथा मिटा देना होगा ।

जहाँ सत्य है, वहाँ सत्य ज्ञान भी है । जहाँ सत्य नहीं है, वहाँ शुद्ध सत्य ज्ञान अमम्भव है । इसीलिए ईश्वर के नाम के साथ चित्त अर्थात् ज्ञान शब्द संयुक्त है और जहाँ सच्चा ज्ञान है, वहाँ आनन्द ही आनन्द होता है, शोक होता ही नहीं । और सत्य शाश्वत है, इसलिए आनन्द भी शाश्वत होता है । इसीलिए हम ईश्वर को मच्चिदानन्द कहते हैं जिसमें सत्य, ज्ञान और आनन्द का समन्वय हुआ है ।

सत्य से प्रेम, विनय और मृदुता का जन्म होता है । सत्यनिष्ठ व्यक्ति को धूल के ममान विनम्र होना पड़ता है । सत्यपरायणता के साथ-साथ उसकी विनम्रता बढ़ती जाती है । मैं अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में इस सत्य का दर्शन कर

रहा हूँ । माल-भर पहले मुझे मृत्यु की जितनी प्रतीति थी और अपनी तुच्छता का जितना भान था, आज मुझे उसमें अधिक प्रतीति हो रही है और साथ ही अपनी तुच्छता का भी अधिक भान हो रहा है । “ब्रह्म मृत्यु जगन्मिथ्या” —इस महान सत्य का फलितार्थ मेरे सामने प्रतिदिन अधिकाधिक स्पष्ट होता जा रहा है । यह हमें धैर्य की सीख देता है । यह हमारी कठोरता को दूर करके हमारी सहिष्णुता की वृद्धि करेगा । यह हमें अपनी गई-जैसी छोटी भूल को पहाड़ जैसा और दूसरों की पहाड़-जैसी भूल को गई के रूप में देखना सिखाएगा । देह-धर्म का कारण हमारा अहं है । देह-धर्म अथवा अहं का सम्पूर्ण लोप ही मोक्ष है । जिसने इस स्थिति को प्राप्त कर लिया है वह मृत्यु की अथवा कहिए, ब्रह्म की जीती-जागती प्रतिमूर्ति होगा । इसीलिए ईश्वर का स्नेह-भरा नाम है दामानुदाम । पत्नी, पुत्र, पुत्री, मित्र और धन-सम्पत्ति सब को मृत्यु के समक्ष गौण मानना चाहिए । मृत्यु की खातिर इन सबकी बलि दे देने को तैयार रहना चाहिए ।

2 सत्य और अहिंसा

अहिंसा और सत्य एक-दूसरे से इतने गुथे हुए हैं कि बन्धे अलग कर पाना लगभग असम्भव है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जिन पर कुछ भी नहीं लिखा है। फिर कोई कैसे कह सकता है कि कौनसा पहलू उलटा है और कौनसा सीधा ? मगर दोनों में इतना अन्तर जरूर है कि अहिंसा साधन है, सत्य साध्य है। साधन तो वही हो सकता है जो हमारी पहुँच के अन्दर हो, और इसलिए अहिंसा हमारा परम कर्त्तव्य है। अगर हम साधन का ध्यान रखते हैं तो देर-सवेर साध्य को प्राप्त कर लेना निश्चित है। एक बार इस बात को मन में बिठा लेने के बाद अन्त में हमारी विजय निश्चित है। हमारे मार्ग में चाहे जितनी बाधाएँ आएँ, ऊपर से देखने में चाहे जितनी विफलताएँ मिलें, हमें सत्य की खोज नहीं छोड़नी चाहिए—सत्य जिसके अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं, क्योंकि वास्तव में सत्य स्वयं ईश्वर है।

अहिंसा साध्य नहीं है, सत्य साध्य है। किन्तु मानव सम्बन्धों में सत्य को चरितार्थ करने का हमारे पास अहिंसा के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है। निरन्तर दृढ़तापूर्वक अहिंसा का पालन करने का मतलब अन्त में सत्य को प्राप्त करना है, किन्तु हिंसा के साथ ऐसी बात नहीं है। इसीलिए अहिंसा में मेरी इतनी अधिक आस्था है। सत्य मुझे स्वाभाविक रूप से प्राप्त हुआ। अहिंसा को मैंने एक संघर्ष के बाद पाया।

किन्तु, चूँकि अहिंसा साधन है, इसलिए अपने दैनिक जीवन में स्वभावतः इससे हमारा ज्यादा सम्बन्ध है। इसलिए हमारे देश की आम जनता को जिस चीज की शिक्षा देनी है वह अहिंसा ही है। इसकी शिक्षा देने पर सत्य की शिक्षा तो एक स्वाभाविक परिणाम के रूप में अपने-आप मिल जाती है।

अहिंसा मेरा ईश्वर है, सत्य मेरा भगवान है। जब मैं अहिंसा के लिए अपनी दृष्टि दौड़ाता हूँ तो सत्य कहता है, “यह मेरे जरिए मिलेगी।” जब मैं सत्य की खोज करता हूँ तो अहिंसा कहती है, “इसे मेरे जरिए पाओगे।”

मुझे दुनिया को कोई भी नई चीज नहीं सिखानी है। सत्य और अहिंसा

सृष्टि के आदि से ही चले आ रहे हैं। मैंने जो कुछ किया है वह इतना ही कि जितने बड़े पैमाने पर मेरे लिए सम्भव था, मैंने इन दोनों के प्रयोग किए हैं। ऐसा करते हुए मुझ से यदा-कदा भूलें भी हुई हैं और उन भूलों से मैंने सीखा है। इसलिए जीवन और जीवन की समस्याएँ मेरे लिए सत्य और अहिंसा के प्रयोग बन गए हैं।

मैं स्वभाव से ही सत्यपरायण रहा हूँ, किन्तु अहिंसा की वृत्ति मुझ में स्वभाव से विद्यमान नहीं थी। एक जैन मुनि ने एक बार मेरे सम्बन्ध में ठीक ही कहा था कि मैं अहिंसा का उतना बड़ा पुजारी नहीं हूँ, जितना कि सत्य का हूँ। मैं सत्य को प्रथम स्थान देता हूँ और अहिंसा को उसके बाद का। कारण, जैसा कि उन्होंने कहा था, मैं सत्य की खातिर अहिंसा का बलिदान कर सकता हूँ। सच तो यह है कि सत्य की खोज के क्रम में ही मैंने अहिंसा को पाया है।

मैं 50 वर्षों से अधिक समय से अहिंसा और उसकी सम्भावनाओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिक सूक्ष्मता के साथ प्रयोग करता रहा हूँ। मैंने इसे जीवन के हर क्षेत्र में—घरेलू, सत्याग्रह, आर्थिक एवं राजनीतिक सभी क्षेत्रों में लागू किया है। यह किसी भी क्षेत्र में असफल नहीं हुई है। जहाँ कहीं यह कभी असफल होती दीख पड़ी है, उसका कारण मैंने अपनी कमजोरियों को माना है। मैं अपने लिए पूर्णता का दावा नहीं करता। मगर यह जरूर कहता हूँ कि मैं सत्य का एक अनन्य साधक हूँ—सत्य जो ईश्वर का ही दूसरा नाम है। उसी खोज के क्रम में मैंने अहिंसा को पाया। इसका प्रचार मेरे जीवन का ध्येय है। मैं अपने इस ध्येय को कार्य-रूप देने के लिए ही जीना चाहता हूँ।

मैंने भारत के सामने आत्मत्याग का प्राचीन सिद्धान्त प्रस्तुत करने का साहस किया है क्योंकि सत्याग्रह और उसकी शाखाएँ—असहयोग और सविनय अवज्ञा—आत्मत्याग के सिद्धान्त के नए नाम के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं।

हिंसा के बीच अहिंसा के सिद्धान्त को खोज निकालने वाले ऋषि वास्तव में न्यूटन से बड़े मनीषी थे। वे बेलिंगटन से कहीं अधिक बड़े योद्धा थे। शस्त्रों के प्रयोग में स्वयं निष्णात होते हुए उन्होंने उनकी व्यर्थता को पहचाना और पीड़ित ससार को बताया कि उसकी मुक्ति हिंसा से नहीं, बल्कि अहिंसा से हो सकती है।

अपने सक्रिय रूप में अहिंसा का अर्थ होता है स्वेच्छा से कष्ट-सहन। इसका मतलब बुराई करने वाले की इच्छा के आगे कमजोरी से झुक जाना नहीं

वल्कि इमका मतलब होता है अत्याचारी की इच्छा का अपनी आत्मा की ममस्त शक्ति से विरोध करना । मानवता के इम मिद्धान्त के अनुसार काम करते हुए किसी एक व्यक्ति के लिए भी अपने सम्मान, अपने धर्म, अपनी आत्मा की खानिर किसी अन्यायी साम्राज्य की मारी ताकत को चुनौती देना और इम प्रकार उस साम्राज्य के पतन अथवा सुधार की नींव डाल सकना सम्भव है ।

और इसलिए मैं यह समझकर भारत से अहिंसा का पालन करने को नहीं कहता हूँ कि वह कमजोर है । मैं चाहता हूँ कि वह अपनी शक्ति और बल को जानते-पहचानते हुए अहिंसा का पालन करे । और उम शक्ति के बोध के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह हथियारों का प्रशिक्षण ले । आज हम इमकी आवश्यकता का अनुभव इसलिए करते हैं कि हम ऐसा मानते हैं कि हम सिर्फ हाड-मांस के लोथड़े ही हैं ।

मैं चाहता हूँ, भारत इस बात को समझे कि उममें एक ऐसी आत्मा है जिसका कभी विनाश नहीं हो सकता और जो ममस्त दुर्बलताओं के बावजूद विजयी हो सकती है और ममस्त समार की सयुक्त भौतिक शक्ति का मुकाबला कर सकती है ।

यदि हम इतिहास के आदि काल से लेकर आज तक के युग पर दृष्टिपात करें तो देखेंगे कि मनुष्य धीरे-धीरे निरन्तर अहिंसा की ओर अग्रसर होता रहा है । हमारे आदिम पूर्वज नरभक्षी थे । फिर ऐसा समय आया जब वे नरभक्षण से ऊब गए और दूसरे प्राणियों के शिकार पर गुजारा करने लगे । फिर एक ऐसी अवस्था आई जब मनुष्य को घुमक्कड़ शिकारी के जीवन पर शर्म आने लगी । अतएव, उसने कृषि को अपनाया और अपने आहार के लिए वह मुख्यतः धरती माता की कृपा पर निर्भर रहने लगा । इम प्रकार एक घुमक्कड़ प्राणी से अब उसने सभ्य और स्थिर जीवन को अपनाया, गाव और नगर बसाए और एक परिवार के सदस्य से अब वह एक समुदाय या राष्ट्र का सदस्य बन गया । ये सब उत्तरोत्तर हिंसा को त्याग कर अहिंसा के मार्ग पर अग्रसर होने के प्रमाण हैं । यदि ऐसा न होता तो सृष्टि के अनेक अन्य प्राणियों की ही तरह मानव का अस्तित्व भी अब तक समाप्त हो चुका होता ।

पैगम्बरों और अवतारों ने भी हमें अहिंसा की न्यूनाधिक शिक्षा दी है । उनमें से किसी ने भी हिंसा की शिक्षा देने का दावा नहीं किया है । ऐसा हो भी

कैसे सकता था ! हिंसा की शिक्षा देने की जरूरत नहीं होती । शरीरधारी के रूप में मनुष्य स्वभाव से हिंसक है, किन्तु आत्मिक रूप से वह अहिंसक है, अन्तर में स्थित आत्मा के प्रति सचेत हो जाने के बाद वह हिंसक रह ही नहीं सकता ? या तो वह अहिंसा की ओर अग्रसर होता है या फिर अपने विनाश की ओर दौड़ता है । इसी लिए पैगम्बरों और अवतारों ने सत्य, ममत्व, भ्रातृभाव, न्याय आदि अहिंसा के तमाम गुणों की शिक्षा दी है ।

मेरा तो दावा है कि आज यद्यपि हमारा सामाजिक ढाँचा अहिंसा की विवेक-पूर्वक स्वीकृति पर आधारित नहीं है, फिर भी मारी दुनिया में मानव जीवन के अस्तित्व और उसके पाम जो भी धन सम्पत्ति है, उसका आधार मनुष्य की पारस्परिक सहिष्णुता ही है । यदि उसने ऐसी सहिष्णुता न अपनाई होती, तो थोड़े-से सर्वाधिक खूषार लोग ही जीवित रहते । लेकिन ऐसा नहीं हुआ । परिवार प्रेम के बन्धन में बंधा हुआ है और इसी तरह तथाकथित मध्य समाज में राष्ट्र के नाम से जाना जानेवाला मानव समुदाय भी इसी बन्धन से आपस में बंधा है । बात सिर्फ इतनी ही है कि वे अहिंसा के सिद्धान्त को सर्वोपरि स्वीकार नहीं करते । इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि उन्होंने अहिंसा की अपार सम्भावनाओं की छानबीन नहीं की है । मेरा कहना है कि अब तक सिर्फ आलस्य और निष्क्रियता के कारण हम ऐसा मान बैठे हैं कि पूर्ण अहिंसा उन चन्द लोगों के लिए ही सम्भव है जो अपरिग्रह त्याग और मयम का व्रत लेते हैं । जहाँ यह सच है कि अहिंसा के सच्चे माधक ही इसकी खोज कर सकते हैं और दुनिया को समय-समय पर, मानव जीवन का नियमन करने वाले इस महान शाश्वत सिद्धान्त की नई-नई सम्भावनाएँ बता सकते हैं, वहाँ यह भी सच है कि यदि सचमुच यह सिद्धान्त है तो यह सब पर ममान रूप से लागू हो सकना चाहिए । इस क्षेत्र में हमें जो अनेक विफलताएँ देखने को मिलती हैं वे वास्तव में इस सिद्धान्त की नहीं, बल्कि इसका अनुसरण करने वाले उन लोगों की विफलताएँ हैं, जिनमें से बहुतों को तो इसका भी भान नहीं होता कि वे चाहे-अनचाहे इस सिद्धान्त के अधीन हैं । किसी माता का अपने पुत्र के लिए प्राण उत्सर्ग कर देना, अनजाने ही इस सिद्धान्त का पालन करना है । मैं पिछले पचास वर्षों से इस सिद्धान्त को समझ कर स्वीकार करने और विफलताओं के बावजूद इसका दृढ़ता से पालन करने की बात कहता रहा हूँ । पचास वर्षों की खोज व माधना के अद्भुत

परिणाम निकले है और उनसे मेरी आस्था को बल मिला है। मैं दावे के साथ कहता हूँ कि निरन्तर अहिंसा का पालन करते रहने से हम एक दिन ऐसी अवस्था में पहुँच जाएंगे जब सम्पत्ति के कानूनी स्वामित्व को सभी लोग स्वेच्छा से मानने लगेंगे। तब इस स्वामित्व में कोई दोष नहीं रह जाएगा। वह पवित्र होगा। तब वह उन विषमताओं का उद्धृत प्रदर्शन नहीं रह जाएगा जो आज हम चारों ओर देखते हैं। और अहिंसा के त्रुटि को अन्यायपूर्ण और अवैध स्वामित्व के बारे में भी परेशान होने की जरूरत नहीं है। उसके पास सत्याग्रह और असहयोग, ये दो अहिंसात्मक शस्त्र तो हैं ही, और जब भी इन दो शस्त्रों का प्रयोग ईमानदारी के साथ पूरी तरह से किया गया है, तब इनको हिंसा का एक सर्वथा प्रभावकारी विकल्प पाया गया है। मैंने अहिंसा विज्ञान को सर्वथा पूर्ण रूप से प्रस्तुत करने का दावा कभी नहीं किया है। अहिंसा के बारे में ऐसा नहीं किया जा सकता। जहाँ तक मैं जानता हूँ, किसी भी भौतिक विज्ञान, यहाँ तक कि गणित के बारे में भी ऐसा नहीं किया जा सकता। मैं तो एक अन्वेषक मात्र हूँ।

आश्चर्यजनक करिश्मों के इस युग में ऐसा कोई नहीं कह सकता कि कोई वस्तु या विचार मात्र इसीलिए निरर्थक है कि वह नया है। किसी चीज के कठिन होने से उसे असम्भव कहना भी युग-धर्म के अनुरूप नहीं है। जिन बातों की कभी किसी ने कल्पना भी नहीं की थी, वे रोजमर्रा देखने को मिल रही हैं। जो असम्भव था वह प्रतिदिन सम्भव होता जा रहा है। हिंसा के क्षेत्र में होने वाली आश्चर्यजनक खोजों को देखकर हम बराबर हैरान हो रहे हैं। लेकिन, मैं कहता हूँ कि इन खोजों से भी कहीं अधिक कल्पनातीत और देखने में असम्भव लगने वाली खोजें अहिंसा के क्षेत्र में की जाएगी।

अहिंसा "बुराई के विरुद्ध लड़ाई से भागना नहीं" है। इसके विपरीत मेरी अहिंसा बुराई के खिलाफ हिंसा के तरीके से नहीं अधिक सक्रिय और मजबूती लड़ाई है, क्योंकि हिंसा तो सहज ही बुराई को और भी बढ़ाती है। मैं पाप और अन्याय के मानसिक और इसलिए नैतिक प्रतिशोध की बात सोचता हूँ। मैं अत्याचारी की तलवार की धार को विल्कुल कुठित कर देना चाहता हूँ। उसके विरुद्ध और भी तेज धार वाले शस्त्रों का प्रयोग करके नहीं, बल्कि उसकी इस आग को झुठला कर कि मैं भौतिक शक्ति से उसका प्रतिरोध करूँगा। मैं जिस आत्मशक्ति से उसका विरोध करूँगा वह उसे चक्कर में डाल देगी। इसे देखकर पहले तो वह

चकित रह जाएगा और अन्त में उसे इसकी श्रेष्ठता स्वीकार करनी पड़ेगी। मगर यह स्वीकृति उममें अपमान और पराजय का भाव नहीं जगाएगी, बल्कि उसे ऊपर उठाएगी। यह कहा जा सकता है कि यह तो एक आदर्श स्थिति है। वास्तव में यह है भी।

अहिंसा एक उच्चकोटि की सक्रिय शक्ति है। यह आत्मबल या हमारे अन्दर बैठे ईश्वर का बल है। अपूर्ण मानव उम सम्पूर्ण तत्व को हृदयगम नहीं कर सकता। वह उमके सम्पूर्ण तेज को मह नहीं मर्गेगा, किन्तु उमका एक छोटे-से छोटा कण भी जब हमारे अन्दर सक्रिय हो जाता है तो वह आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है।

अपने अन्दर ईश्वर की जीवन्त उपस्थिति का बोध नि सन्देह इसकी सबसे पहली शर्त है।

जिम व्यक्ति में अभिमान और अहंकार है, उममें अहिंसा नहीं हो सकती। नम्रता के बिना अहिंसा अमम्भव है।

अपने अहं को सर्वथा मिटा देने के बाद ही मैं दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह की शक्ति का विकास कर पाया।

अहिंसा के लिए किसी प्रकार के बाहरी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। इसके लिए बदले में भी किसी की हत्या न करने की इच्छा और मन में प्रतिशोध की भावना को स्थान दिए बिना मृत्यु को वरण करने का साहस भर पर्याप्त है। कोई यह न समझे कि मैं अहिंसा पर यह कोरा प्रवचन कर रहा हूँ। जो कुछ कह रहा हूँ, वह तर्क पर आधारित एक मार्वाभौम सिद्धान्त की बात है। यदि इस सिद्धान्त में हमारी अगाध श्रद्धा हो तो हमारे लिए कोई भी उत्तेजना इतनी बड़ी नहीं होगी कि हम उसे वर्दाशत न कर सकें। इसे मैंने वीरो की अहिंसा कहा है।

प्रेम कभी भी मागता नहीं, वह तो केवल देता ही है। वह सदा सहता है, कभी भी किसी बात का बुरा नहीं मानता, कभी प्रतिशोध की भावना को स्थान नहीं देता।

जहां प्रेम है, वहीं जीवन है। घृणा विनाश की जननी है।

दुनिया में प्रेम सबसे बड़ी शक्ति है, साथ ही यह सबसे अधिक विनम्र है।

मेरे पास प्रेम के अतिरिक्त और कोई शक्ति, कोई अधिकार नहीं है।

मैं कल्पना लोक में विचरण करने वाला जादमी नहीं हूँ। मैं एक

व्यावहारिक आदर्शवादी हूँ। अहिंसा-धर्म केवल ऋषियों और सत्तों के लिए नहीं है। यह सामान्य जनो के लिए भी है। जिस प्रकार हिंसा पशुओं का धर्म है, उसी प्रकार अहिंसा मनुष्यों का धर्म है। पशुओं की आत्मा दबी रहती है इसलिए वे शारीरिक शक्ति के अलावा और किसी मिद्धान्त को नहीं जानते। मनुष्य की गरिमा एक उच्चतर सिद्धान्त का पालन करने—आत्मा की शक्ति के अनुसार चलने में है।

आजकल यह कहने का फैशन-मा हो गया है कि समाज का संगठन अथवा संचालन अहिंसात्मक तरीके से नहीं हो सकता। मैं इससे सहमत नहीं हूँ। परिवार में जब पिता अपने बगड़े लड़के को तमाचा लगाता है तो लड़का बदला लेने की नहीं सोचता है। वह पिता की आज्ञा का पालन उस तमाचे के प्रतिरोधक प्रभाव के कारण नहीं करता, बल्कि इसलिए करता है कि वह अपने पिता के आहत प्रेम को पहचानता है। मेरे विचार से यह उम तरीके का एक प्रतीक है जिस तरीके से समाज का संचालन होता है या होना चाहिए। जो बात परिवार पर लागू होती है वह समाज पर भी लागू होनी चाहिए। क्योंकि समाज भी तो आखिरकार परिवार का ही बृहतर रूप है।

मेरा अहिंसा का सिद्धान्त एक अत्यन्त सन्निय शक्ति है। इसमें कायरता या कमजोरी के लिए कोई स्थान नहीं है। किसी हिंसक व्यक्ति के लिए किसी दिन अहिंसा का धर्म अपना लेने की आशा तो की जा सकती है, लेकिन कायर के बारे में ऐसी आशा बिल्कुल नहीं की जा सकती। इसलिए इन पृष्ठों में मैंने कई बार कहा है कि यदि हम अपनी, अपनी मा-बहनो की तथा अपने धर्मस्थानों की रक्षा कष्ट-सहन अर्थात् अहिंसा के द्वारा करना नहीं जानते तो हमें, यदि हममें मर्दानगी है तो, इनकी रक्षा लड़कर करनी चाहिए।

जिस प्रकार किसी अन्धे से सुन्दर दृश्यों का आनन्द लेने के लिए कहना व्यर्थ है, उसी प्रकार किसी कायर से अहिंसा का धर्म अपनाने को कहना बेकार है। अहिंसा वीरता की पराकाष्ठा है।

यदि हमें मचमुच अहिंसक बनना है तो हमें किसी भी ऐसी वस्तु की आकांक्षा नहीं करनी चाहिए जो ससार के छोटे से छोटे मनुष्य के पास नहीं हो सकती।

यदि कोई व्यक्ति, अपने निजी व्यवहार में, व्यक्तिगत सम्बन्धों में अहिंसा का पालन नहीं करता तो और बड़े क्षेत्रों में उसका पालन करने की आशा

करना दुःगथा मात्र है। उदारता की तरह अहिंसा का पालन भी अपने घर से ही शुरू करना चाहिए।

चरित्र-बल की पूँजी के बिना सत्याग्रह का सघर्ष असम्भव है।

अवज्ञा तो मविनय तभी होगी जब उमके पीछे पूरी ईमानदारी हो, आदर भाव हो, मयम हो, उममे किमी का तिरस्कार करने का भाव न हो, और वह अच्छी तरह से समझे हुए मिद्वान्त पर आधारित हो। वह किमी मनक मे आकर न की गई हो और मवमे बड़ी बात यह है कि उममे दुर्भावना या घृणा का लेश भी न हो।

सत्याग्रह का प्रयाग करने हुए मैने बिल्कुल शुरू मे पाया कि सत्य की खोज, विरोधी के प्रति हिमात्मक व्यवहार की अनुमति नहीं देती। विरोधी को वैय और मज्ञानुमति मे गलत गमने मे हटाना चाहिए। क्योंकि जो चीज किमी एक को सत्य प्रतीत होती है वही दूसरे को गलत भी लग सकती है। और वैय का मतलब है स्वेच्छा मे काट-महन करना। इस प्रकार इस मिद्वान्त का मतलब यह निकला कि विरोधी का कष्ट पहुँचाकर नहीं, बल्कि स्वयं कष्ट सहकर सत्य को प्रतिष्ठित करना।

सत्य के साथ-साथ यदि आप अहिंसा को अपना कर चले तो आप मारी दुनिया को अपने कदमों मे झुका सकते हैं। सत्याग्रह का मार है राजनीतिक अर्थात् राष्ट्रीय जीवन मे सत्य और विनय का प्रयोग।

अहिंसा का महज स्वरूप ही ऐसा है कि उममे सत्ता को 'जबर्दस्ती नहीं छोना' जा सकता और न यह उमका लक्ष्य हो सकता है। लेकिन, अहिंसा इसमे कही ज्यादा काम कर सकती है। यह मरकार के तत्र को किसी से छोने बिना बडे ही प्रभावकारी ढंग मे उमका नियन्त्रण और पथप्रदर्शन कर सकती है। यही इसकी खूबमूरती है।

सत्याग्रही का मशा कभी भी दुगई करने वाले को परेशान करना नहीं होता। वह उममे भय पैदा करके नहीं, बल्कि उमके हृदय को जीतकर उसे सुधारने की कोशिश करता है। सत्याग्रही का उद्देश्य दुगई करने वाले के साथ जोर-जबर्दस्ती करना नहीं, बल्कि प्रेम के बल पर उसे सही रास्ते पर लाना होता है। उसे अपने हर काम मे दिखावट मे बचना चाहिए। वह जो कुछ करता है, महज रूप मे और अन्तर के-विश्वाम मे प्रेरित होकर करता है।

सत्याग्रही को बुराई और बुराई करने वाले में भेद को कभी नहीं भूलना चाहिए । उसे अपने मन में बुराई करने वाले के प्रति कोई कटुता नहीं रखनी चाहिए । — मच्चा सत्याग्रही सदा ही प्रयत्न करेगा कि वह बुराई को अच्छाई से जीते, क्रोध को प्रेम से जीते, अमृत्य को मृत्यु से जीते और हिंसा को अहिंसा से जीते । ससार से बुराई को मिटाने का इसके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है ।

चूँकि सत्याग्रह सीधी कार्रवाई का एक सशक्त तरीका है, इसलिए सत्याग्रही सत्याग्रह का सहारा लेने से पूर्व अन्य सभी उपायों को आजमा कर देख लेता है । अतएव पहले तो वह लगानार और बार-बार सत्ताधारियों के सामने अपनी बात रखेगा, जनमत से अपील करेगा, उसे शिक्षित करेगा, शान्ति से ठण्डे दिल से, जो भी उसकी बात सुनना चाहेगा, उसे अपनी बात बताएगा और इतना सब कर लेने के बाद ही वह सत्याग्रह का महारा लेगा । किन्तु, एक बार अन्तरात्मा का दुर्निवार आदेश पा लेने के बाद जब वह सत्याग्रह आरम्भ करेगा तो फिर उसके लिए पीछे लौटने का कोई रास्ता नहीं रह जाएगा ।

सत्याग्रही जेल डमलिये नहीं जाता कि वह इस तरह सत्ताधारियों को परेशानी में डाले । उसका उद्देश्य अपनी निर्दोषता और सच्चाई दिखाकर उनका हृदय परिवर्तन करना होता है । आपको एक बात ठीक समझ लेनी चाहिए कि सत्याग्रह के नियम का तकाजा है कि जेल वही जाए, जिनने अपने अन्दर जेल जाने की नैतिक योग्यता विकसित कर ली हो । जिसने यह योग्यता विकसित नहीं की हो उसका जेल जाना व्यर्थ होगा और अन्त में उसे निराशा के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलेगा ।

सत्याग्रही भय को तिलाजलि दे देता है । इसलिए वह कभी भी अपने विरोधी का विश्वास करने में सकोच नहीं करता । यदि उसका विरोधी उसे बीस बार धोखा दे तब भी वह इक्कीसवीं बार उसका विश्वास करने को तैयार रहता है, क्योंकि मनुष्य में विश्वास करना मूल सिद्धान्त है ।

बहुत-से लोग शका से सिर हिलाते हुए ऐसा कहते हैं "मगर आप जनसाधारण को अहिंसा नहीं सिखा सकते । यह तो व्यक्तियों के लिए ही सम्भव है और सो भी कुछ गिने-चुने व्यक्तियों के लिए ही ।" मेरे विचार से यह भारी आत्मवचना है । यदि मानव जाति स्वभाव से ही अहिंसक न होती तो न जाने कब की वह विनष्ट हो चुकी होती । किन्तु, हिंसा और अहिंसा के युद्ध में अहिंसा अन्ततः मदा विजयी हुई है ।

सचार्थ यह है कि अब तक हमने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के साधन

के रूप में जनता में अहिंसा का प्रचार करने के लिए पूरे दिल से धैर्यपूर्वक काम ही नहीं किया है ।

प्रश्न—जब हम जानते हैं कि आम जनता बहुत जल्दी क्रोध, घृणा और द्वेष के वशीभूत हो जाती है तब फिर आप यह कैसे मानते हैं कि वह अहिंसा का पालन कर सकती है ? आम लोग बहुत छोटी-छोटी बातों के लिए लड़ाई-झगडा कर बैठते हैं ।

उत्तर—हां, बात तो ऐसी जटिल है, लेकिन फिर भी मैं मानता हूँ कि मनुके हित का खयाल करके वे अहिंसा का पालन कर सकते हैं । क्या आप यह समझते हैं कि जिन हजारों स्त्रियाँ ने नमक कानून को तोड़ा उनके मन में किसी के प्रति दुर्भावना थी ? वे जानती थी कि कांग्रेस या गांधी ने उनसे कुछ काम करने को कहा है और उन्होंने विश्वास और आशा के साथ वे काम किए । मेरी गाय में अहिंसा का सबसे पूर्ण प्रदर्शन चम्पागण में किया गया था । जमींदारी के जुल्म के खिलाफ विद्रोह करने वाले उन हजारों रैयतों के मन में क्या सरकार या निलह माहवों के प्रति तनिक भी दुर्भावना थी ? अहिंसा में विश्वास वे बिना समझे करते थे—उसी प्रकार जैसे बहुत-से लोग बिना समझे मानते हैं कि पृथ्वी गोल है । मगर अपने नेताओं में उनका विश्वास मजबूत था और इतना ही काफी था । जो लोग नेतृत्व करते हैं उनकी बात और है । उनका विश्वास तो समझ पर ही आधारित होना चाहिए, और उन्हें अपने विश्वास के अनुरूप आचरण करने को तैयार रहना चाहिए ।

मगर हम व्यक्तियों अथवा समुदायों को इस कठिन कला की शिक्षा कैसे दें ? इसका कोई बना-बनाया सीधा मार्ग नहीं है । इसका एक ही रास्ता है और वह यह कि आप स्वयं इस मिश्रात पर चलकर लोगों के सामने उदाहरण पेश करें । वेशक, अपने जीवन में इस मिश्रात को मूर्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि आप इस विषय का सम्यक मनन करें, असीम धैर्य और लगन से काम लें तथा अपने को समस्त दोषों और बुराइयों से मुक्त रखें । जब आपको भौतिक विज्ञानों पर अधिकार प्राप्त करने के लिए अपना पूरा जीवन लगा देना पड़ता है तो सोचिए कि इस सबसे बड़ी आत्मिक शक्ति पर अधिकार प्राप्त करने के लिए आपको कितने जन्म लगाने होंगे ? मगर इसके लिए अगर कई जन्म भी लगाने पड़ें तो उनकी चिन्ता क्यों होनी चाहिए ? क्योंकि यदि जीवन में यही एक स्थायी वस्तु

है, यदि यही एक ऐसी वस्तु है जिसका सच्चा महत्व है तो फिर इस पर अधिकार प्राप्त करने के लिए जितना भी प्रयत्न किया जाए, उसे अच्छा ही समझना चाहिए। पहले दैवी सिद्धि प्राप्त करिए, फिर सब सिद्ध हो जाएगा।

अहिंसा ही दैवी सिद्धि है।

प्रश्न—यह मानते हुए कि स्वतंत्रता प्राप्त करने का एकमात्र उपाय जनक्रांति ही है, क्या आप इस बात को व्यावहारिक समझते हैं कि ऐसी जनक्रांति के दौरान तमाम उत्तेजनाओं के बावजूद जनता विचार और कार्य में सर्वथा अहिंसक बनी रहेगी या रह सकती है। एक व्यक्ति के लिए तो उम्र स्तर तक पहुँच पाना सम्भव हो सकता है, मगर क्या आप ऐसा सोचते हैं कि सर्वसाधारण भी कभी वैसी अहिंसा वरत सकती है ?

उत्तर—आज आपके मुँह से ऐसा सवाल सुनकर कुछ अजीब-सा लगता है, क्योंकि सम्पूर्ण अहिंसात्मक संग्राम इस बात का साक्ष्य है कि जहाँ कहीं हिंसा भड़की है उसमें सर्वसाधारण का हाथ नहीं रहा है बल्कि उसे कुछ विविष्ट वर्गों अर्थात् बौद्धिक लोगों ने ही भड़काया है। हिंसात्मक लड़ाई में भी, यद्यपि व्यक्ति विशेष यदा-कदा अपना आपा खो बैठते हैं, किन्तु सारी सेना कभी भी वैसा नहीं करती। वह तो अपने नायकों के आदेश पर ही शस्त्र उठाती है और उनका आदेश मिलते ही उसे शस्त्र डाल देने पड़ते हैं, चाहे किसी व्यक्ति के भीतर प्रतिहिंसा की भावना कितनी भी तीव्र क्यों न हो। ऐसा मानने का कोई स्पष्ट कारण दिखाई नहीं देता कि अहिंसक लड़ाई में भी यदि सर्वसाधारण को अनुशासन की शिक्षा दी गई हो तो वह उतने ही अनुशासन का परिचय क्यों न देगी जितना संगठित हिंसात्मक लड़ाई में एक सेना दिखाती है। इसके अतिरिक्त अहिंसात्मक लड़ाई के सेनापति को एक विशेष सुविधा भी रहती है। वह यह है कि उसे सफलतापूर्वक अपनी लड़ाई चलाने के लिए हजारों नेताओं की जरूरत नहीं होती। अहिंसा के संदेश को लोगों तक पहुँचाने के लिए इतने सारे नेताओं की आवश्यकता नहीं होती। यदि कुछ थोड़े-से स्त्री-पुरुषों ने अहिंसा की भावना को पूरी तरह ग्रहण कर लिया हो तो उनका उदाहरण अतः सर्वसाधारण में अहिंसा की वृत्ति जगाने के लिए पर्याप्त सिद्ध होता है। आन्दोलन के आरम्भ में मैंने यही अनुभव किया। मैंने देखा कि लोग मचमुच ऐसा मानते थे कि अहिंसा की सीख देते हुए भी मैं दिल से हिंसा का ही हामी था। परिस्थितियों ने उन्हें नेताओं की बातों का ऐसा ही अर्थ लगाना सिखाया

था। लेकिन जब उन्होंने यह अनुभव किया कि मैं जो कुछ कहता हूँ मर्चे हृदय से कहता हूँ तब उन्होंने कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अहिंसा का पालन करके दिखाया। चौरीचौरा कांड की पुनरावृत्ति नहीं हुई। और जहां तक विचारों में अहिंसा का सम्बन्ध है, मचाई क्या है यह तो भगवान ही जानता होगा। लेकिन इतना तो निश्चित है कि कोई भी व्यक्ति जब तक अपने विचारों में भी अहिंसा का समावेश नहीं करेगा तब तक वह कार्य रूप में भी अहिंसा का पालन नहीं कर सकता।

मेरा यह निश्चित मत है कि हिंसा के आधार पर कोई भी स्थायी चीज खड़ी नहीं की जा सकती।

पशुवल का उत्तर पशुवल से देना नैतिक और बौद्धिक दिवालियापन है। उससे तो केवल बुराई का कभी न टूटने वाला मिलमिला ही शुरू हो सकता है।

फिर भी आत्मरक्षा के लिए या किसी अमहाय की रक्षा के लिए हिंसा का महाराग लेना कायरता से तो अच्छा है। कायरता में, पुष्प या स्त्री किसी को कोई लाभ नहीं होता।

सम्पूर्ण जाति निर्बोध्य हो जाए, इसके बजाय मैं हिंसा का महाराग लेना हजार गुना ज्यादा अच्छा समझता हूँ।

मेरा यह निश्चित मत है कि जहां चुनाव केवल कायरता और हिंसा के बीच करना हो, वहां मैं हिंसा को ही चुनूंगा।

भारत कायरों की तरह अमहाय और मूक बनकर अपमान मरे, इसके बजाय मैं यह चाहूंगा कि वह शस्त्र उठाकर अपने सम्मान की रक्षा करे।

मैं हिंसा का विरोध इसलिए करता हूँ कि जब वह कुछ भलाई करती प्रतीत होती है तब भी वह भलाई अस्थायी ही होती है, जबकि उससे होने वाली बुराई स्थायी होती है।

लेकिन मैं मानता हूँ कि अहिंसा हिंसा से लाख गुना श्रेष्ठ है, क्षमा दण्ड से अधिक पुरोचित है। क्षमा वीरों का भूषण है। मगर दण्ड न देना, तभी क्षमा माना जाएगा जब दण्ड देने की शक्ति हो। किसी अमहाय व्यक्ति की क्षमा का कोई मतलब नहीं है।

लेकिन मैं भारत को अमहाय नहीं मानता। ————— मैं अपने को असहाय प्राणी नहीं मानता। ————— शक्ति शारीरिक क्षमता से ही नहीं आती। इसका

स्रोत अदम्य इच्छा-शक्ति है ।

क्रोध और विद्वेष से ग्रहित कष्ट-महन-रूपी सूर्य के सामने कठोर से कठोर हृदय भी पिघल जाता है , और घोर से घोर अज्ञान का अन्धकार भी छट जाता है ।

यदि लोभ न होता तो हथियारों की जरूरत न होती । अहिंसा के सिद्धांत का तकाजा है कि दुनिया में किसी भी प्रकार का शोषण न हो ।

एक बात निश्चित है । यदि शस्त्रों की होड़ जारी रही तो एक न एक दिन ऐसा नरमहार मचेगा जैसा इतिहास में पहले कभी नहीं मचा । यदि इस युद्ध में कोई देश विजयी होकर भी निकला तो उसकी विजय उसके लिए जीवित मृत्यु होगी । इस सम्भावित विनाश में बचने के सिवाय इसका और कोई रास्ता नहीं है कि हम बहादुरी के साथ बिना किसी शर्त के अहिंसात्मक तरीके को उसके समस्त भव्य फलितार्थों के साथ अपना ले ।

मुझे इसमें तनिक भी मन्देह नहीं है कि कल की दुनिया अहिंसा पर आधारित होगी, और होनी चाहिए ।

3 विश्वास और सिद्धान्त

मैं ऐसा कोई दावा नहीं करता कि मुझ में कोई ऐसा दैवी गुण है जो दूसरों में नहीं है। मैं अपने को खुदा का रमूल नहीं समझता। मुझे तो मृत्यु की लगन है। मैं मृत्यु का विनम्र साग्रह मान हूँ। ईश्वर का साक्षात्कार करने के लिए मैं किसी भी बलिदान को बड़ा नहीं समझता। मेरे सारे क्रिया-कलाप का लक्ष्य, चाहे वह सामाजिक हो या राजनीतिक, मानव कल्याण से सम्बन्धित हो या नैतिकता से, मृत्यु की खोज ही है। और चूँकि मैं जानता हूँ कि ईश्वर का निवास बड़े और समर्थ प्राणियों की अपेक्षा अक्सर क्षुद्र से क्षुद्र प्राणियों में ही होता है इसलिए मैं उनसे अपना तादात्म्य स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हूँ। मैं उनकी सेवा किए बिना उनके साथ एकाकार नहीं हो सकता। दलितों और शोषितों की सेवा करने की मेरी आकुलता का कारण यही है। और चूँकि मैं राजनीति में प्रवेश किए बिना इनकी सेवा नहीं कर सकता या इसीलिए मैं राजनीतिक क्षेत्र में हूँ। इस प्रकार मैं किसी का मालिक या स्वामी नहीं हूँ। मैं तो भारत का और इस प्रकार मानवता का एक विनम्र सेवक हूँ—ऐसा सेवक जो निरन्तर प्रयत्न करता है, और जिससे भूले भी हो सकती हैं।

वास्तव में मेरा जीवन एक अविभाज्य और सम्पूर्ण इकाई है और मेरी सभी प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं और उनका स्रोत मनुष्य जाति के प्रति मेरा अथाह प्रेम है।

मेरी शिक्षा और मेरे उपदेश अव्यावहारिक नहीं हैं, क्योंकि मैं प्राचीन मृत्यों का ही उपदेश देता हूँ और जो कुछ कहता हूँ उस पर स्वयं आचरण करने की भी कोशिश करता हूँ। और मेरा दावा है कि जिन सिद्धान्तों पर मैं अमल करता हूँ उन पर सभी अमल कर सकते हैं, क्योंकि मैं बहुत साधारण मनुष्य हूँ—मुझ में भी वही कमजोरियाँ हैं जो किसी अदना से अदना आदमी में हो सकती हैं।

मेरा यह विश्वास दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है कि जो बात मेरे लिए सम्भव है वह एक वच्चे के लिए भी सम्भव है। यह बात मैं कुछ ठोस आधार पर

कह रहा हूँ । सत्य को प्राप्त करने के साधन जितने सरल हैं, उतने ही कठिन भी हैं । ये साधन अहंकारी व्यक्ति को विल्कुल असम्भव लग सकते हैं और भोले बालक को विल्कुल सम्भव भी । सत्य के साधक में रास्ते की धूल से भी अधिक नम्रता होनी चाहिए । दुनिया धूल को अपने पैरों से रौंदती है, लेकिन सत्यान्वेपी को इतना विनम्र होना चाहिए कि उसे राह की धूल तक रौंद दे । तभी उसे सत्य की झलक मिल सकती है, उससे पहले नहीं ।

मुझे तपस्वी कहना गलत है । जो आदर्श मेरे जीवन का नियमन करते हैं, सारे मनुष्यों के लिए हैं । उन आदर्शों तक मैं क्रमिक विकास के द्वारा पहुँचा हूँ । मैंने हर कदम योजनापूर्वक और बहुत मोच-ममझकर उठाया है । मेरा आत्मनिग्रह और मेरी अहिंसा दोनों का आधार मेरा व्यक्तिगत अनुभव रहा है और ये दोनों मेरे सार्वजनिक कर्तव्य के पालन के लिए आवश्यक हो गए । दक्षिण अफ्रीका में मुझे जिस अलगाव का जीवन बिताना पड़ा, वह चाहे गृहस्थ का हो या वकील का सामाजिक सुधारक का हो या राजनीतिज्ञ का, उसके लिए आवश्यक था कि अपने इन कर्तव्यों को पूरा करने के लिए, मैं कठोरतम इन्द्रिय संयम में काम लूँ और मानवीय सम्बन्धों में—चाहे वे अपने देश भाइयों के साथ हो या यूरोपियनों के साथ—अहिंसा और सत्य का पूरी तरह पालन करूँ । मैं अपने को औमत दर्जे का आदमी और औमत में भी कम योग्यता वाला समझता हूँ । और बड़ी लगन और खोज में मैं जिस अहिंसा या आत्मनिग्रह को प्राप्त कर सका हूँ उसके लिए भी मैं कोई विशेष श्रेय का दावा नहीं करता । मुझे पूरा विश्वास है कि यदि कोई पुरुष अथवा स्त्री मेरे ही समान प्रयत्न करे और मेरी ही तरह आस्था रखे तो वह भी जो कुछ मैंने प्राप्त किया है उसे प्राप्त कर सकता है ।

मेरे लिए मुक्ति का मार्ग अपने देश की ओर उसके द्वारा समस्त मानवता की अनवरत सेवा ही है । मैं सृष्टि के समस्त प्राणियों में एकाकार हो जाना चाहता हूँ । 'गीता' के शब्दों में कहूँ तो मैं अपने मित्र और शत्रु दोनों के साथ शान्ति के साथ रहना चाहता हूँ । इसलिए भले ही कोई मुमलमान या ईसाई अथवा हिन्दू मुझ में घृणा करे मैं उसे उसी तरह प्यार करना और उसकी सेवा करना चाहता हूँ जिस तरह अपनी पत्नी या पुत्र की । इसलिए मेरी देश भक्ति चिरम्बतवता और शान्ति के साम्राज्य की ओर मेरी यात्रा की एक मजिल भर है । इस प्रकार यह

देखा जा सकता है कि मेरे लिए धर्म के बिना राजनीति का कोई मतलब ही नहीं है। राजनीति धर्म की चेरी है। धर्म में रहित राजनीति मृत्युपाश के समान है, क्योंकि ऐसी राजनीति आत्मा का हनन करती है।

मृत्यु की सर्वव्यापी आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए क्षुद्र से क्षुद्र प्राणी से भी, अपनी तरह प्रेम करना आवश्यक है। और जो मनुष्य मृत्यु का साक्षात्कार करना चाहता है, वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में अलग नहीं रह सकता। इसीलिए मेरी मृत्युनिष्ठा मुझे राजनीति में खींच लाई है, और मैं सर्वथा निःसंकोच भाव में, किन्तु साथ ही पूर्ण विनम्रता के साथ, कह सकता हूँ कि जो लोग यह कहते हैं कि धर्म का राजनीति में कोई मरोकार नहीं है वे धर्म के मर्म को बिल्कुल नहीं जानते।

मेरी शक्ति का मम इसी बात में छिपा हुआ है कि मैं लोगों में ऐसा कुछ भी करने को नहीं कहता जिसे मैंने अपने जीवन में खुद ही बार-बार आजमा कर न देख लिया हो।

मेरे जीवन-दर्शन में साधन और साध्य एक-दूसरे के पर्याय हैं।

लोग कहते हैं, “साधन तो आखिर साधन ही है।” मैं कहूँगा, “आखिरकार साधन ही तो मच-कुछ है।” जैसा साधन होगा, वैसा ही साध्य होगा। साधन और साध्य के बीच भेद की कोई दीवार नहीं है। मच तो यह है कि हमारे स्रष्टा ने हमें साधन पर ही अधिकार दिया है (और वह भी बहुत सीमित)। साध्य पर तो हमारा कोई वश है ही नहीं। हम अपने साध्य को वही तक साध सकते हैं जहाँ तक साधन को साधेंगे। इस नियम में अपवाद की कोई गुंजाइश नहीं है।

साधन को हम बीज और साध्य को वृक्ष कह सकते हैं। इन दोनों में वही अटूट सम्बन्ध है जो बीज और वृक्ष के बीच है।

मैं शुद्ध अहिंसा और खुले साधनों का समर्थक हूँ। छिपावट से मुझे घृणा है।

सभी पाप छिपकर किए जाते हैं। जिस क्षण हम यह समझ लेंगे कि ईश्वर हमारे विचारों का भी साक्षी है, उसी क्षण हम मुक्त हो जाएंगे।

अशुद्ध साधन से प्राप्त साध्य भी अशुद्ध होता है। मृत्यु को अमृत्यु में नहीं प्राप्त किया जा सकता। सत्याचरण से ही मृत्यु को प्राप्त किया जा सकता है।

सफलता-विफलता हमारे हाथ में नहीं है। यदि हम अपना कर्तव्य ठीक

से करे तो इतना काफी है। हमारे वश में तो केवल कर्म करना ही है। फल तो ईश्वर के हाथ में है।

पचास वर्षों से भी अधिक समय से मैं फल की चिन्ता न करने का अभ्यास करता रहा हूँ। मुझे जिम चीज की चिन्ता होनी चाहिए, वह है साधन। और जब मुझे साधन के पवित्र होने का पूरा विश्वास होता है तो यह मुझे आगे ले जाने के लिए पर्याप्त होता है। उस आस्था के आगे मारा भय और आशकाएँ मिट जाती हैं।

जीवन भर मृत्यु पर आग्रह रखकर मैंने ममझोते की खूबमूरती को ममझना सीखा है। बाद में चलकर मैंने देखा कि ममझोते की भावना मृत्याग्रह का एक आवश्यक अंग है। इसके कारण कई बार मेरा जीवन खतरे में पड़ गया है और मेरे मित्र मुझसे नाराज हुए हैं। लेकिन मृत्यु पत्थर की नाई कठोर ओर कली के समान सुकुमार होता है।

मैं तो लोगों के गलत प्रचार का अभ्यस्त हो गया हूँ। सभी लोकसेवी व्यक्तियों के साथ ऐसा ही होता है। उन्हें महनगील होना चाहिए। अगर ऐसे हरेक आक्षेप का जवाब और सफाई देनी पड़े तब तो जीवन भार बन जाएगा। मेरा यह नियम है कि कोई मेरे ऊपर गलत आरोप करे तो उसकी सफाई तब तक नहीं देता जब तक कि हमारे ध्येय के लिए वैसा करना आवश्यक न हो। इस नियम ने मेरा बहुत समय बचाया है और मैं बहुत-सी परेशानियों से बच गया हूँ।

मैं एक सत्यान्वेषी मात्र हूँ। मेरा दावा है कि मैंने उस तक पहुँचने का रास्ता पा लिया है और मेरा यह दावा भी है कि मैं सत्य को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील हूँ। लेकिन मैं यह स्वीकार करता हूँ कि अब तक मैं उसे पा नहीं सका हूँ। मृत्यु को पूर्णतः प्राप्त कर लेने का मतलब अपने आपको उन्नति के शिखर पर ले जाना, ईश्वर ने जिम उद्देश्य के लिए हमें रचा है उस उद्देश्य को प्राप्त कर लेना है, अर्थात् सर्वथा पूर्ण बन जाना है। लेकिन, मैं जानता हूँ और इस जानकारी से मुझे दुःख भी होता है कि मुझमें कमियाँ हैं, लेकिन मेरी सारी शक्ति का रहस्य भी इसी बात में है, क्योंकि ऐसा बहुत ही कम होता है कि मनुष्य अपनी कमियों को पहचाने।

सत्य के अतिरिक्त मैं किसी का भक्त नहीं हूँ और सत्यानुशासन के अतिरिक्त मैं और कोई अनुशासन नहीं मानता।

मैं अदम्य आशावादी हूँ, क्योंकि मेरा अपने ऊपर विश्वास है। यह बात अहंकारपूर्ण लगती है। है न ? लेकिन अपनी सम्पूर्ण विनम्रता के साथ मैं यह बात कहता हूँ। मैं ईश्वर की सर्वाच्च शक्ति में विश्वास रखता हूँ। मैं मृत्यु में विश्वास करता हूँ और इसलिए इस देश के और इसीलिए मानवता के भविष्य के विषय में मैं पूर्ण रूप में आश्वस्त हूँ।

मैं नहीं मानता कि हर प्राचीन वस्तु प्राचीन होने से ही श्रेष्ठ है। ईश्वर ने हमें जो बुद्धि-विवेक दिया है, उसे प्राचीन परम्पराओं की बेदी पर बलिदान कर देने के पक्ष में मैं नहीं हूँ। कोई भी परम्परा, चाहे कितनी प्राचीन हो, यदि नैतिकता से मेल नहीं खाती तो सर्वथा त्याज्य है। अस्पृश्यता को भट्टे ही प्राचीन प्रथा माना जाए, बाल-विधवा और बाल-विवाह की प्रथाएँ चाहे जितनी प्राचीन मानी जाएँ और इसी तरह की और भी अनेक गतिष्ठ प्राचीन रूढ़ियाँ और अन्धविश्वास हैं जिन्हें, यदि मेरा ब्रह्म चले तो मैं जड़-मूल से नष्ट कर दूँ।

मैं मानता हूँ कि यदि हम मनुष्य में डरना छोड़ दें और केवल ईश्वरीय सत्य के उपासक बन जाएँ तो हम सभी ईश्वर के सन्देशवाहक बन सकते हैं और मैं ऐसा मानता हूँ कि मैं ईश्वरीय सत्य को खोज रहा हूँ तथा मैं मनुष्य के भय में त्रिस्तुल्य मुक्त हो गया हूँ।

मैं सभी की लकीर का फकीर नहीं रहा। मैं सत्य का उपासक हूँ और इसलिए किसी विषय पर किसी विशेष समय पर मैं जो महसूस करता और मोचता हूँ, वही मुझे कहना चाहिए। भले ही उस पर पहले मैंने कुछ और कहा हो। ज्यों-ज्यों मेरी दृष्टि साफ होती जायगी, प्रतिदिन के अभ्यास के साथ-साथ मेरे विचार भी अधिकाधिक स्पष्ट होते जाएंगे। जहाँ मैंने मोच-समझ कर अपने किसी विचार में परिवर्तन किया है, वहाँ वह परिवर्तन साफ होना चाहिए। केवल मतक दृष्टि से ही क्रमिक और अदृश्य विकास देखा जा सकता है।

मेरा उद्देश्य किसी प्रश्न पर पहले दिए किसी वक्तव्य से सगति रखना नहीं है। मेरा लक्ष्य तो जिस समय मुझे सत्य जिस रूप में दिखाई दे उससे सगति रखना है। परिणामस्वरूप मैं अपने विकास क्रम में एक के बाद दूसरे सत्य को अंगीकार करता गया हूँ।

मुझे बरतना बहुत आसान है। मैं भले ही किसी मत पर दृढ़ता से डटा रहूँ, किन्तु जिस क्षण मुझे यह पता लग जाए कि यह गलत है, उसी क्षण मैं उसे छोड़

देता है ।

भविष्य को मैं नहीं जानना चाहता, मुझे वर्तमान की चिन्ता है । आने वाले क्षण पर ईश्वर ने मुझे कोई अधिकार नहीं दिया है ।

यह अभेद्य अधिकार जो हमें घेरे हुए है, वह अभिशाप न होकर वरदान है । उमने हमें ब्रम इतनी ही शक्ति दी है कि हम अगला कदम देख सकें और यदि दिव्य ज्योति हमें वह कदम दिखा दे तो हमारे लिए इतना ही बहुत है । फिर तो हम न्यूमैन के स्वर में स्वर मिलाकर गा सकते हैं । “मेरे लिए एक कदम ही काफी है ।” पिछले अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि अगला कदम हमारे सामने हमेशा स्पष्ट होगा । दूसरे शब्दों में, यह अभेद्य अधिकार उतना अभेद्य नहीं है जितना हम उसे समझते हैं । लेकिन जब हम अपने उतावलेपन में उम अगले कदम से आगे देखना चाहते हैं तो हमें वह अधिकार अभेद्य लगने लगता है ।

मैं आस्थावान व्यक्ति हूँ । मेरा भरोसा केवल ईश्वर पर है । मेरे लिए एक कदम ही काफी है । उससे अगला कदम समय आने पर ईश्वर मुझे दिखा देगा ।

मैं एक तुच्छ प्राणी हूँ और मैं निरन्तर प्रयाम करता हूँ कि मैं अच्छा बनूँ । मन, वचन और कर्म से पूरी तरह सच्चा और पूरी तरह अहिंसक बनूँ । किन्तु मैं इम आदर्श तक, जिसे मैं सही समझता हूँ, पहुँच पाने में अभी तक असफल रहा हूँ । मैं मानता हूँ कि यहाँ तक पहुँचना कष्टपूर्ण है लेकिन उस कष्ट में ही मेरे लिए आनन्द है । हर कदम मुझे अधिक शक्तिशाली और अगले कदम के लिए समर्थ बनाता है ।

सत्य के आग्रह से जो बल प्राप्त हो सकता है उसके अतिरिक्त और कोई बल मुझ में नहीं है । अहिंसा भी उसी आग्रह से उत्पन्न होती है ।

सत्य में या सत्य के द्वारा ही मुझे सौंदर्य की अनुभूति होती है । सत्य की सभी अभिव्यक्तियाँ—केवल सच्चे विचार ही नहीं बल्कि वे चेहरे, वे चित्र और वे गीत हैं जिनसे सचाई प्रकट होती है, बहुत सुन्दर हैं । आमतौर में लोग सत्य में सौंदर्य नहीं देख पाते, माधारण मनुष्य सत्य से भागता है, और उसमें निहित सौंदर्य के प्रति अधा वन जाता है । जब लोग सत्य में सौंदर्य देखने लगेंगे तभी सच्ची कला का प्रादुर्भाव होगा ।

जीवन सभी प्रकार की कला से बड़ा है । मैं तो इसमें भी आगे जाकर यह कह

सकता है कि जिम मनुष्य का जीवन पूर्णता के सबसे निकट पहुँच जाए वह सबसे बड़ा कलाकार है, क्योंकि उच्च जीवन के मुद्दे आधार और टाचे के बिना कला का महत्व ही क्या है।

जैसे-जैसे मैं अपने सामाजिक जीवन के अन्तिम छोर पर पहुँच रहा हूँ, मैं कह सकता हूँ कि जीवन की पवित्रता सबसे महान और सबसे अच्छी कला है। सुरीले कंठ से सुन्दर मगीत का मृजन बहुत-से लोग कर सकते हैं किन्तु जीवन के सारे तार मिला कर शुद्ध स्वर निकालना बहुत कम लोगों के लिए सम्भव है।

मैं अपने देशवासियों का तकलीफ़ा में बचाना चाहता हूँ। किन्तु उसमें अधिक मैं यह चाहता हूँ कि मनुष्य के स्वभाव में पाशविकता न आए। मैं जानता हूँ कि जो लोग स्वेच्छा में कष्ट मने हैं वे अपने आपका और सारी मानवता को ऊपर उठाने हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि जो लोग अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करने में या अपने-से दुर्बल राष्ट्रों या लोगों का शोषण करने में पशु के समान हिंसक बन जाते हैं वे न केवल अपने आपका बल्कि समस्त मानवता को नीचे गिराते हैं। और यह मेरे लिए या किसी के लिए भी प्रसन्नता की बात नहीं हो सकती कि मानव स्वभाव का इस प्रकार अग्र पतन हो। यदि हम सब उसी परम पिता की मन्तान हैं और एक ही दैवी तत्त्व समान रूप में हम सब में है तो हमें हर व्यक्ति के पाप का समान रूप में भागी होना चाहिए, चाहे वह हमारी जाति का हो या दूसरी जाति का। आप समझ सकते हैं कि किसी भी व्यक्ति में पशुता को जागृत करना, कितना बुरा काम है।

मेरा ध्येय सारे समार से मित्रता स्थापित करना है, और मैं अधिक से अधिक प्रेम के साथ बुराई का अधिक में अधिक विरोध कर सकता हूँ।

मैं किसी भी बुराई का समर्थन नहीं कर सकता। मेरे लिए सत्याग्रह का सिद्धान्त प्रेम का सिद्धान्त है—एक शाश्वत सिद्धान्त है। जो कुछ भी अच्छा है उसमें मैं सहयोग करता हूँ, जो कुछ बुरा है उसमें मैं असहयोग करता हूँ।

आत्मशुद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्न करते हुए मेरे अन्दर कुछ थोड़ी-सी सामर्थ्य आ गई है, जिससे मैं अन्तर की वह मूढ आवाज मही-मही और माफ़-माफ़ सुन सकता हूँ।

ईश्वर की इच्छा का मुझे विशेष रूप में अनुभव नहीं हुआ है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर प्रतिदिन हर मनुष्य के सम्मुख प्रकट होता है। किन्तु अन्तर

की उम सूक्ष्म आवाज के प्रति हम अपने कान वन्द कर लेते हैं। हम अपनी आवाज वन्द कर लेते हैं और हमारे सामने ही खड़ा वह ज्योतिपुज हमें दिखाई नहीं देता। मैं ईश्वर की सर्वव्यापकता का अनुभव करता हूँ।

मैं समार में केवल एक ही क्रूर शामक की अधीनता स्वीकार करता हूँ और वह है अन्तर की सूक्ष्म आवाज।

और हर व्यक्ति चाहे तो उम आवाज को सुन सकता है। वह प्रत्येक मनुष्य के अन्दर है। किन्तु सभी बातों की तरह, इसके लिए भी पहले में निश्चित तैयारी करनी पड़ती है।

जिम क्षण मैं अन्तर की उम सूक्ष्म आवाज को दवा दूँगा उसी दिन मेरी उपयोगिता समाप्त हो जाएगी।

देश की जितनी कुछ सेवा करने की शक्ति मेरे अन्दर है उमका कारण अन्तर की आवाज सुन सकने और उम पर चलने की मेरी क्षमता है। आप अवश्य यह नहीं चाहेंगे कि अब जीवन के इस सध्याकाल में मैं अपने को बदल दूँ और अन्तर की आवाज के बजाय कोई और आवाज सुनूँ।

जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब यह जरूरी हो जाता है कि आप किसी विचार पर अमल करें, चाहे आपके निकटतम मित्र आपका साथ दे या न दे। कर्त्तव्य द्वंद्व की स्थिति में, फैसला हमेशा अन्तर की आवाज ही कर सकती है।

जीवन में ऐसे क्षण आते हैं जब हमें किसी बाहरी प्रमाण की जरूरत नहीं होती। एक सूक्ष्म आवाज हमारे अन्दर से कहती है, "तुम ठीक रास्ते पर हो, न दाएँ मुड़ो न बाएँ, सीधे और सकीर्ण मार्ग पर चलते रहो।"

जन्म और मृत्यु दोनों ही महान रहस्य हैं। यदि मृत्यु एक हमारे जीवन के लिए आरम्भिक कदम नहीं है तो बीच का समय एक क्रूर विडम्बना है। हमें मृत्यु पर शोक न करने की कला सीखनी चाहिए। चाहे किसी की भी मृत्यु हो और कभी हो। मेरा खयाल है कि यह हम सभी कर पाएँगे जब हम स्वयं अपनी मृत्यु के प्रति पूरी तरह उदासीन होना सीख जाएँगे। और यह तब हो सकेगा जब हमें प्रत्येक क्षण यह अनुभव हो कि हमने वह काम पूरा कर लिया है जो हमें करना था।

जीवन में ऐसा अवसर भी आता है जब मनुष्य के लिए यह जरूरी नहीं होता कि वह अपने विचारों की घोषणा करे, व्यवहार में उनको प्रकट करने की तो बात

ही दूर है। विचार ही कर्म होते हैं। उन्हें यह शक्ति प्राप्त हो जानी है। फिर उसके बारे में कहा जा सकता है कि उसका अकर्म ही कम है। मेरा प्रयत्न उसी दिशा में है।

क्या मुझे मे एक वीर की अहिंसा है? केवल मेरी मृत्यु ही यह दिखा सकेगी। यदि कोई मेरी हत्या करे और मैं हत्यारे के भले के लिए प्रार्थना करना हुआ और ईश्वर का नाम लेता हुआ और अपने हृदय में उसकी उपस्थिति अनुभव करता हुआ प्राणत्याग करूँ तभी यह कहा जा सकेगा कि मेरी अहिंसा एक वीर की अहिंसा थी।

मैं शक-हारे मनुष्य की मौत नहीं मरना चाहता। हत्यारे की गोली मेरे जीवन का अन्त कर सकती है। मैं उसका स्वागत करूँगा। किन्तु सबसे अधिक मैं यह चाहूँगा कि आखिरी समय तक अपना कर्त्तव्य करने हुए मेरे जीवन का अन्त हो।

यदि मैं किसी लम्बी बीमारी में मरूँ, यहाँ तक कि यदि मैं किसी फोडे-फुसी के कारण मरूँ तो आपका यह कर्त्तव्य होगा—भले ही इसमें लोग आपसे नागज हो जाए कि आप दुनिया के सामने यह धोषणा करें कि मैं भगवान का वैसा भक्त नहीं था जैसा कि मैं हमेशा दावा करता था। यदि आप ऐसा करेंगे तो उसमें मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी। आप यह भी याद करें कि यदि कोई मुझे गोली मार कर मेरे जीवन का अन्त करना चाहेगा—जैसा कि अभी हाल ही में किसी ने एक बम फेंक कर करना चाहा था और यदि मैं उस गोली को बिना आह भरे अपने सीने पर झेल लूँ और ईश्वर का नाम लेते हुए अपने प्राण त्याग दूँ तभी मेरा दावा सच्चा साबित होगा।†

मेरे चले जाने के बाद कोई एक व्यक्ति पूरी तरह मेरा प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगा। किन्तु मेरा थोड़ा-थोड़ा अंश आप में मे कई लोगों में जीवित रहेगा। यदि प्रत्येक मनुष्य अपने स्वार्थ से पहले कर्त्तव्य का विचार करेगा तो मेरी खाली जगह काफी हद तक भर जाएगी।

मेरे मित्र मेरा सबसे अधिक आदर इस प्रकार कर सकते हैं कि वे मेरे कार्यक्रम को अपने जीवन में उतारे या यदि वे उस पर विश्वास नहीं करते तो मेरा

† गांधीजी ने यह बात मृत्यु से 20 घण्टे से भी कम पहले 29 जनवरी, 1948 को कही थी।

विरोध करे । कार्य के इस युग में अन्धभक्ति बिल्कुल बेकार की चीज है । मुझे इसमें सकोच और कष्ट होता है ।

मैं पुनर्जन्म नहीं चाहता । किन्तु यदि मुझे फिर से जन्म लेना ही पड़े तो मेरी कामना है कि मैं अछूत का जन्म लू ताकि मैं उनके दुखों में, उनके उत्पीड़न में, उनके अपमान में, मागीदार हो सकूँ ताकि मैं अपने को और उनको उनकी दयनीय दशा में छूटकारा दिलाने के लिए प्रयत्न कर सकूँ । इसलिए मेरी भगवान् में प्रार्थना है कि यदि मुझे दुनिया में फिर से जन्म लेना पड़े तो मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के रूप में नहीं बल्कि, अतिशूद्र के रूप में जन्म लूँ ।

4 सब धर्मों की आत्मा एक है

विश्वाम के अभाव में दुनिया क्षण भर भी नहीं टिक सकती । जिन मनुष्यों ने प्रार्थना और तपस्या में अपने जीवन को पवित्र कर लिया है उनके विवेकपूर्ण अनुभव को अपनाना ही मन्त्रा विश्वाम है । इसलिए पुराने युगों के अवतारों और पैगम्बरों में विश्वाम, अविश्वाम नहीं है, वह मानव की अन्तरात्मा की आध्यात्मिक आवश्यकता को पूरी करता है ।

कई बातें ऐसी हैं जिनमें तर्क हमें बहुत दूर तक नहीं ले जा सकता और हमें विश्वाम या श्रद्धा से काम लेना पड़ता है । वही विश्वाम तर्क का विरोधी नहीं होता बल्कि उसे लाघ जाता है । विश्वाम एक प्रकार की छठी ज्ञानेन्द्रिय है जो उन विषयों में काम करती है जो तर्क से परे हैं ।

मैं बुद्धि के दमन की बात नहीं करता । मैं केवल यह कहता हूँ हम उस तत्त्व को मान्यता दे जो तर्क को प्रतिष्ठा प्रदान करता है ।

विश्वास कोई ऐसा कोमल फूल नहीं है, जो हल्के से तूफान में कुम्हला जाए । विश्वाम हिमालय के समान अचल है । कोई भी तूफान हिमालय को उसकी जगह में नहीं हटा सकता । —मैं चाहता हूँ कि आप में से प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर और धर्म के प्रति वह विश्वाम अपने अन्दर पैदा करे ।

धर्म से मेरा तात्पर्य किसी धर्म विशेष या परम्परागत धर्म से नहीं है । मेरा तात्पर्य उस धर्म से है जो सभी धर्मों का आधार है, जिसके द्वारा हमें ईश्वर के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं ।

सचमुच हमारे सब कार्य धर्म से प्रेरित होने चाहिए । यही धर्म का अभिप्राय मत-मतान्तर से नहीं है । इसका अर्थ है विश्व की नियामक एक नैतिक व्यवस्था में विश्वास । हम उसे देख नहीं पाते, इससे उसकी वास्तविकता कुछ कम नहीं होती । यह धर्म हिन्दू धर्म, इस्लाम और ईसाइयत आदि से परे है । यह इन सभी धर्मों को अपने-अपने स्थान से नहीं हटाता । यह उनमें सामंजस्य लाता है और उनको यथार्थता प्रदान करता है ।

समस्त धर्म एक ही बिन्दु पर आकर मिलने वाले विभिन्न मार्ग हैं। यदि हम सब एक ही लक्ष्य पर पहुँचते हैं, तो इससे क्या अन्तर पड़ता है कि हमारे मार्ग भिन्न-भिन्न हैं।

मुझे 'सहिष्णुता' शब्द पसन्द नहीं है किन्तु मुझे इससे अच्छा कोई शब्द नहीं सूझता। सहिष्णुता का आधार यह धारणा है कि दूसरे का धर्म हमारे धर्म से निम्नकोटि का है, जबकि अहिंसा हमें यह सिखाती है कि हम दूसरों के धार्मिक विश्वासों का वैसा ही सम्मान करें जैसा कि हम स्वयं अपने धर्म का करते हैं। इस प्रकार हम अपने धर्म की अपूर्णता को स्वीकार करें। सत्य का उपासक जो प्रेम के सिद्धान्त का पालन करता है यह तुरन्त स्वीकार करेगा। यदि हमें सत्य का पूरा दर्शन हो गया होता तो हम केवल अन्वेषक न रहकर परमेश्वर के साथ एकरूप हो जाते क्योंकि सत्य ही परमेश्वर है। किन्तु हम चूँकि केवल अन्वेषक हैं हम अपनी खोज में लगे रहते हैं और अपनी अपूर्णता के प्रति जागरूक रहते हैं। और चूँकि हम स्वयं अपूर्ण हैं, हम जिस धर्म की कल्पना करते हैं वह भी अपूर्ण होगा। हम धर्म को उसकी पूर्णता में नहीं पा सके हैं उसी प्रकार जैसे हम परमेश्वर को नहीं पा सके हैं। इस प्रकार हमारी कल्पना का धर्म अपूर्ण होने के नाते सतत विकासशील है। और यदि मनुष्य द्वारा कल्पित सभी धर्म अपूर्ण हैं, तो उनके एक-दूसरे की अपेक्षा अच्छा या बुरा होने का सवाल ही नहीं उठता। सभी धर्म सत्य को प्रकट करते हैं किन्तु साथ ही सभी धर्म अपूर्ण हैं और दोषयुक्त हो सकते हैं। दूसरे धर्मों का सम्मान करने का यह आशय नहीं है कि हम उनके दोषों के प्रति आँखें मूँद लें। अपने धर्म में जो दोष हैं उनके प्रति भी हमें सजग रहना चाहिए किन्तु इन दोषों के कारण उसे छोड़ना नहीं चाहिए, बल्कि उन्हें दूर करने का यत्न करना चाहिए। यदि हम सब धर्मों को समान दृष्टि से देखेंगे तो दूसरे धर्मों की सभी अच्छाइयों को अपने धर्म में मिलाने में हम हिचकिचाएंगे नहीं, बल्कि ऐसा करना हम अपना कर्तव्य समझेंगे।

प्रश्न उठता है आखिर इतने सारे धर्म क्यों हो ? आत्मा एक है किन्तु वह बहुत-से शरीरों को अनुप्राणित करती है। हम शरीरों की सख्या को कम नहीं कर सकते तो भी हम आत्मा की एकता स्वीकार करते हैं। जिस प्रकार एक पेड़ का एक ही तना होता है किन्तु कई शाखाएँ और पत्ते होते हैं उसी प्रकार सच्चा और पूर्ण धर्म केवल एक है किन्तु मनुष्य के माध्यम से गुजरता हुआ वह अनेक हो

जाता है। वह एक धर्म वाणी से परे है। अपूर्ण मनुष्य ऐसी भाषा में उसे व्यक्त करते हैं, जो उन्हे आती है और दूसरे लोग उनके शब्दों को समझने की कोशिश करते हैं जो उन्हीं की भाँति अपूर्ण हैं। कौनमा अर्थ ठीक माना जाए? अपनी-अपनी दृष्टि में हर मनुष्य ठीक है पर यह भी अमम्भव नहीं कि हर मनुष्य गलती पर हो। इस कारण सहिष्णुता की आवश्यकता है। जिसका अर्थ यह नहीं कि हम अपने धर्म के प्रति उदासीन हो, बल्कि यह कि हम अधिक विवेकपूर्वक और शुद्ध रूप से उसे प्रेम करें। सहिष्णुता हमें आध्यात्मिक अन्तरदृष्टि देती है जो कठमुल्लेपन से उतनी ही दूर है, जितना उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव। धर्म का सच्चा ज्ञान विभिन्न धर्मों के बीच की दीवारों को गिरा देता है।

दूसरे धर्मों के प्रति सहिष्णुता सीखने से हम अपने धर्म को अधिक अच्छी तरह समझ सकेंगे।

सहिष्णुता स्पष्ट और बुरे या अच्छाई और बुराई के बीच के भेद को नहीं मिटाती। यहाँ बराबर ममार के प्रमुख धर्मों का जिक्र किया जा रहा है। उन सभी के आधारभूत सिद्धान्त समान हैं उन सभी ने महान सन्तों को जन्म दिया है।

मैं ससार के सभी महान धर्मों की मूलभूत सचाई में विश्वास करता हूँ। मेरा विश्वास है कि वे सभी ईश्वरप्रदत्त हैं और यह भी कि वे उन लोगों के लिए आवश्यक थे जिन्हें उनका ज्ञान हुआ। मेरा यह भी विश्वास है कि यदि हम भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के धर्मशास्त्रों को उनके अनुयायियों के दृष्टिकोण से पढ़ें तो हम देखेंगे कि मूलतः वे सब एक हैं और एक-दूसरे के सहायक हैं।

एक परमेश्वर में विश्वास सभी धर्मों का आधार है। किन्तु मैं ऐसे समय की कल्पना नहीं कर सकता जब ससार भर में केवल एक ही धर्म होगा। सिद्धान्ततः चूँकि ईश्वर एक है इसलिए धर्म भी एक होना चाहिए। किन्तु व्यवहार में मुझे अब तक कोई दो व्यक्ति ऐसे नहीं मिले जिनकी ईश्वर के सम्बन्ध में धारणा एक जैसी हो। इसलिए ऐसा लगता है कि हमेशा ही ससार में विभिन्न धर्म रहेंगे जो विभिन्न मानवी स्वभावों और वातावरण के अनुरूप होंगे।

धर्मों का उद्देश्य मानव को मानव से अलग करना नहीं, बल्कि उन्हे साथ लाना है।

मैं न केवल भारत के, बल्कि ससार के समस्त लोगों से प्रेम करता हूँ, जो विभिन्न

धर्मों को मानते हैं, मैं चाहता हूँ कि वे एक-दूसरे के सम्पर्क में आएँ और उससे अधिक अच्छे बनें। और यदि ऐसा होता है तो दुनिया आज से बहुत अच्छी होगी। मैं अधिक से अधिक सहिष्णुता पर जोर देना चाहता हूँ और मेरा प्रयत्न इसी दिशा में है। मैं चाहता हूँ कि लोग हर धर्म की छानबीन धर्मवेत्ताओं की दृष्टि से ही करें। मैं नहीं चाहता कि मेरे मपनों का भारत केवल एक ही धर्म को माने—कि वह पूरा हिन्दू या पूरा ईसाई या पूरा मुसलमान हो। मैं चाहता हूँ कि वह पूरी तरह सहिष्णु हो और उसमें सभी धर्म एक-दूसरे के साथ-साथ चले।

आवश्यकता आज एक धर्म की नहीं अपितु विभिन्न धर्मों के अनुयायियों की एक-दूसरे के प्रति आदर और सहिष्णुता की भावना की है। हमारा उद्देश्य एक जड़ समानता नहीं बल्कि अनेकता में एकता प्राप्त करना है। परम्पराओं को उखाड़ फेंकने, वशगत गुणों को मिटाने, देशकाल का प्रभाव मिटाने का कोई भी प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। इतना ही नहीं, यह पाप भी है। सभी धर्मों की आत्मा एक है, किन्तु वह अनेक रूपों में है। ये रूप अनन्त काल तक बने रहेंगे। बुद्धिमान व्यक्ति बाह्य आवरण की ओर ध्यान न देकर, उनके अन्दर जो एक आत्मा है उसी को देखेंगे। हिन्दुओं के लिए यह सोचना कि इस्लाम, ईसाई धर्म, पारसी धर्म को भारत से खदेड़ दिया जाए, एक बेकार का स्वप्न है ठीक वैसे ही जैसे मुसलमानों का यह सोचना कि केवल उनकी कल्पना का इस्लाम मारे ससार में राज्य करेगा। किन्तु यदि एक ईश्वर और उसके पैगम्बरों की एक अटूट शृंखला में विश्वास इस्लाम की कसौटी है, तो हम सब मुसलमान हैं। साथ ही हम सब हिन्दू और ईसाई भी हैं। सत्य किसी एक धर्म ग्रंथ की वपौती नहीं है।

हम अपने को ईसाई, हिन्दू या मुसलमान कह सकते हैं। हम चाहे कुछ भी हो हमारी इस विविधता के नीचे हमारी एकता स्पष्ट है और विविध धर्मों के मूल में एक धर्म है। मेरा अनुभव यह है कि किसी न किसी समय हम हिन्दू, मुसलमान या ईसाई सभी यह जान लेते हैं कि हम में परस्पर समानताएँ बहुत-सी हैं और भिन्नता कम।

मुझे प्रत्येक धर्म उतना ही प्रिय है जितना हिन्दू धर्म। —धर्म परिवर्तन का विचार भी मेरे मन में नहीं आ सकता। हमें हिन्दू को और अच्छा हिन्दू बनने में सहायता करनी चाहिए, मुसलमान को और अच्छा मुसलमान बनने में और ईसाई को और अच्छा ईसाई बनने में। —हमें अपने अन्दर से यह दम्भ मिटा देना

चाहिए कि हमारा धर्म अधिक सच्चा है और दूसरे का कम सच्चा है। हमारे सब धर्मों के प्रति हमारा दृष्टिकोण साफ और ईमानदारी का होना चाहिए। दूसरों के लिए हमारी प्रार्थना यह नहीं होनी चाहिए “हे ईश्वर जो प्रकाश तूने मुझे दिया है वह उसे भी दे।” हमारी प्रार्थना यह होनी चाहिए “हे ईश्वर, उसे वह प्रकाश दिखा, उसे उस सत्य के दर्शन करा जो उसके अधिक से अधिक विक्रम के लिए आवश्यक है।”—————यदि कुछ लोग अपना धार्मिक विल्ला बदलना चाहते हो (धर्म परिवर्तन करना चाहते हो) तो मैं उनकी स्वतन्त्रता में बाधा नहीं डाल सकता। किन्तु मुझे उनके ऐसा करने से खेद होगा।

हिन्दू धर्म कोई एकागी धर्म नहीं है। इसमें समार के सभी पैगम्बरों की पूजा के लिए स्थान है। सामान्य अर्थ में वह मिश्रित धर्म नहीं है। निःसन्देह इसमें बहुत-सी जातियाँ आकर मिल गई हैं पर यह बहुत धीरे-धीरे और अदृश्य रूप से हुआ है। हिन्दू धर्म प्रत्येक मनुष्य में यह कहता है कि वह अपने ही विश्वास या धर्म के अनुसार ईश्वर की आराधना करे, इसलिए वह प्रत्येक धर्म के साथ शांतिपूर्वक रहता है।

यद्यपि धार्मिक विश्वास के रूप में मैं अपने को ईसाई नहीं कह सकता, पर अहिंसा में मेरी अडिग आस्था के सुदृढ़ होने में, जिससे मेरा सब नैतिक और सांसारिक व्यवहार चालित होता है, ईसा के बलिदान के उदाहरण का बड़ा प्रभाव है।

मैं निश्चयपूर्वक इस्लाम को ईश्वर द्वारा प्रेरित धर्म मानता हूँ और इसलिए कुरान शरीफ को ईश्वर द्वारा प्रेरित इलहामी पुस्तक मानता हूँ और मुहम्मद को पैगम्बर मानता हूँ।

मैं यह नहीं मानता कि केवल ‘वेद’ ही देव वाणी हैं। मैं ‘बाइबिल’, ‘कुरान’ और ‘जेंद अवेस्ता’ को भी ईश्वर द्वारा वैसे ही प्रेरित मानता हूँ जैसे वेदों को। हिन्दू धर्मशास्त्रों में मेरे विश्वास का यह अर्थ नहीं कि मैं प्रत्येक शब्द और प्रत्येक मन्त्र को ईश्वरवाक्य मानूँ—————मैं शास्त्र की ऐसी किसी भी व्याख्या को स्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ जो बुद्धि या नैतिक भावना के विरुद्ध हो, चाहे वह व्याख्या कितनी ही पांडित्यपूर्ण क्यों न हो।

मैं शब्द को नहीं पकड़ता। इसलिए मेरा यत्न यह होता है कि ससार के विभिन्न धर्मशास्त्रों की भावना को समझूँ। इनका अर्थ निकालने में मैं सत्य और अहिंसा के उन्हीं सिद्धान्तों का सहारा लेता हूँ जिनका प्रतिपादन ये धर्मशास्त्र

स्वयं करते हैं। सत्य-अहिंसा की कसौटी पर जो कुछ भी खरा नहीं उतरता उसे मैं त्याग देता हूँ और जो कुछ उससे मेल खाता है उसे मैं अपना लेता हूँ।

सत्य और सदाचार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

यदि कोई मनुष्य अपने धर्म के तत्व तक पहुँच जाता है तो वह दूसरे धर्मों के भी तत्व तक पहुँच जाता है।

मैं प्रत्येक उस धार्मिक मिद्धान्त का त्याग करता हूँ जिसे बुद्धि स्वीकार नहीं करती और जो नैतिक भावना के विरुद्ध हो। मैं ऐसी बुद्धिविरुद्ध धार्मिक भावना को भी सहन कर सकता हूँ जिसमें अनैतिकता न हो।

क्योंकि हम नैतिक आधार छोड़ देते हैं हम धार्मिक नहीं रह जाते। नैतिकता के परे धर्म नाम की कोई चीज नहीं होती। उदाहरणार्थ यह नहीं हो सकता कि कोई मनुष्य झूठा हो, क्रूर हो, असयमी हो और साथ ही यह दावा करे कि ईश्वर उसके साथ है।

हमारा विकास उसी समय रुक जाता है जब हम बुराई और भलाई में भेद करना छोड़ देते हैं और अतीत का, जिसे हम अच्छी तरह नहीं मानते, अन्धा अनुकरण करते हैं। अतीत में जो कुछ महान और श्रेष्ठ था वह हमारी धरोहर है। पुरानी भूलें दोहरा कर हमें अपनी धरोहर का अपमान नहीं करना चाहिए।

जहाँ भय है वहाँ धर्म नहीं हो सकता।

निर्भीकता का अर्थ उद्दत्ता या आक्रामकता नहीं है। यह तो भीखता की निशानी है। निर्भीकता में शांति और स्थिरचित्तता निहित है। इसके लिए यह आवश्यक है कि ईश्वर में जीवन विश्वास हो।

मैं मूर्तिपूजक भी हूँ और मूर्तिध्वंसक भी। मूर्ति पूजा के पीछे जो भावना है मैं उसका आदर करता हूँ। यह भावना मानव समाज के उत्थान में बहुत काम करती है। मैं चाहूँगा कि मैं अपनी पूरी शक्ति, अपनी जान देकर भी, उन सहस्रों मन्दिरों की रक्षा कर सकूँ जो हमारी इस भूमि को पवित्र बनाए हुए हैं।

मैं इस अर्थ में मूर्तिध्वंसक हूँ कि मैं धार्मिक असहिष्णुता के रूप में छद्म मूर्ति पूजा का खण्डन करता हूँ जो अपने धर्म के अतिरिक्त किसी दूसरे धर्म के तरीके से ईश्वर की पूजा करना ठीक नहीं समझती। इस प्रकार की मूर्ति पूजा अधिक सूक्ष्म और पकड़ में न आने वाली होने के कारण उस मूर्ति पूजा से कहीं अधिक खतरनाक है जो पत्थर या सोने की प्रतिमा में ईश्वर को मानकर उसे पूजती है।

मैं नहीं मानता कि मन्दिर पाप या अन्धविश्वास के प्रतीक है। किसी न किसी रूप में सामुदायिक पूजा के लिए एक स्थान मानव समाज की एक आवश्यकता है।

यह मैं एक कट्टर हिन्दू मित्र के उत्तर में लिख रहा हूँ जिसने इन शब्दों में मुझे उपालम्भ दिया है “आपने अपने आश्रम में ‘कलमा’ को स्थान दिया है। आपके हिन्दुत्व के नष्ट होने में और क्या कमर रह गई है ?”

मेरा पक्का विश्वास है कि इससे मेरा और आश्रम के दूसरे हिन्दुओं का हिन्दुत्व और दृढ़ हुआ है। हमारे दिल में सभी धर्मों के लिए एक-सा आदर होना चाहिए। वादगाह खान जब कभी भी आश्रम में आते हैं तो यहाँ की प्रार्थना में खुशी-खुशी शामिल होते हैं। रामायण जिस धुन में गाई जाती है वह उन्हें बहुत प्रिय है और वे ध्यानपूर्वक गीता सुनते हैं। इससे इस्लाम में उनकी आस्था कम नहीं हो गई। तो फिर मैं उतने ही आदर और भक्ति के साथ कुरान क्यों न सुनूँ ?

राम के केवल सहस्र नाम ही नहीं हैं। उसके असंख्य नाम हैं और वह वही है चाहे आप उसे अल्लाह कहें, खुदा कहें, रहीम कहें, रज्जाक कहें, जगत-पालक कहें या जो कुछ भी भक्ति भावना से कहें।

मेरा विश्वास है कि प्रार्थना धर्म की आत्मा और उसका सार है। इसलिए प्रार्थना मनुष्य के जीवन का केन्द्र बिन्दु होनी चाहिए। क्योंकि धर्म के बिना कोई मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। कुछ लोग हैं जो अपने बुद्धि के अहंकार में कहते हैं कि धर्म से उन्हें कोई वास्ता नहीं। किन्तु यह तो वैसा ही है जैसे कोई यह कहे कि वह सास तो लेता है पर उसके नाक नहीं है। ———जो मनुष्य प्रार्थना करता है उसका चित्त शांत होगा और ससार के साथ भी वह शांति से रहेगा। किन्तु जो मनुष्य बिना प्रार्थना किए अपने सासारिक धर्मों में लगा रहेगा वह स्वयं दुखी रहेगा और दुनिया को भी दुखी बनाएगा। इसलिए प्रार्थना का प्रभाव मनुष्य के परलोक पर ही नहीं पड़ता बल्कि इस लोक में, उसके जीवन के लिए भी वह बहुत महत्वपूर्ण है। हमारे दैनिक कृत्यों में व्यवस्था, शांति और सुस्थिरता लाने का एकमात्र साधन प्रार्थना है। ———

मैं मानता हूँ कि यदि किसी मनुष्य के व्यवहार में चौबीसों घण्टे ईश्वर मौजूद रहे तो उसे प्रार्थना के लिए अलग समय निकालने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु ज्यादातर लोगों के लिए यह असम्भव है। दुनिया के धंधे उनको हर समय घेरे रहते

है। उनके लिए हर रोज, चाहे मिनटो के लिए सही, बाहरी जगत से अपना ध्यान हटाना असीम लाभदायक होगा। यह मौन सम्पर्क उनको दुनिया के शोरगुल के बीच भी अविचल शांति की अनुभूति कराने, क्रोध पर काबू पाने और धैर्य पैदा करने में मदद देगा।

मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह कोई परियोजना की कहानी नहीं है। मैंने केवल उन सब मनुष्यों के अनुभवों का सार बताया है जिन्होंने प्रार्थना द्वारा अपनी उन्नति के मार्ग में सब कठिनाइयों पर विजय पाई है। मैंने अपना यह तुच्छ अनुभव भी इसमें शामिल किया है कि जितनी मेरी आयु बढ़ती जाती है उतना ही मैं यह अनुभव करता हूँ कि श्रद्धा और प्रार्थना का—जो मेरे लिए एक ही चीज है, मेरे जीवन में कितना योगदान है। और मैं जिस अनुभव का जिक्र कर रहा हूँ वह कुछ घण्टों, दिनों या सप्ताहों का नहीं है। वह लगभग चालीस वर्षों की लम्बी अवधि का है। मुझे निराशाओं ने घेरा है, मैं निविड अन्धकार में से गुजरा हूँ, धैर्य टूटने लगा है, पैर डगमगाए हैं और अभिमान ने सिर उठाया है। किन्तु मैं कह सकता हूँ कि मेरी आस्था ने—जो कि अब भी बहुत कम है, उतनी नहीं, जितनी कि मैं चाहता हूँ—इन सभी कठिनाइयों पर अब तक हर बार विजय पाई है। —

जब तक हम अपने अहं को मिटा नहीं देते, तब तक हम अपने अन्दर की बुराई पर विजय नहीं पा सकते। इससे पूर्व कि हमें असली स्वतन्त्रता मिल सके, ईश्वर, हम से उसके मूल्य के रूप में पूर्ण आत्मसमर्पण चाहता है। जब मनुष्य इस प्रकार अपने को मिटा देता है, तो वह तुरन्त अपने को दूसरों की सेवा में फिर पा लेता है। यह उसके आनन्द और मनोविनोद का साधन बन जाती है। वह एक नया आदमी बन जाता है और ईश्वर की सृष्टि की सेवा में अपने को खपा देने में कभी नहीं थकता।

इसलिए आपको चाहिए कि अपने दिन का आरम्भ प्रार्थना से करें और ऐसे सच्चे दिल से करें कि वह शाम तक आपके साथ रहे। अपना दिन प्रार्थना के साथ समाप्त कीजिए, ताकि आपकी नींद सुखद हो और दुःस्वप्नों से मुक्त हो। प्रार्थना के रूप की चिन्ता न कीजिए। इसका रूप कुछ भी हो, वह ऐसी होनी चाहिए कि हम उस दैवी शक्ति से समीपता में आ जाएँ। प्रार्थना का कोई भी रूप हो यह अवश्य खयाल रहना चाहिए कि जिस समय प्रार्थना के शब्द आपके

मुख से निकल रहे हो उस समय आपका मन इधर-उधर न भटक रहा हो ।

स्वेच्छा से किया गया समय मजबूरी नहीं होता । जो मनुष्य असमय का मार्ग अपनाता है, यानी जो अपनी वामनाओं की पूर्ति का मार्ग अपनाता है वह विकारो का दास बन जाता है, जबकि वह मनुष्य जो अपने को नियम-मयम के बन्धन में बाधता है, अपने को मुक्त कर देता है । विश्व में सभी चीजें—सूर्य, चन्द्रमा और तारे भी कुछ नियमों के अनुसार चलते हैं । इन नियमों के नियामक प्रभाव के बिना यह ससार एक क्षण भी नहीं चल सकता । यदि आप अपने ऊपर किसी न किसी प्रकार का अनुशासन नहीं रखेंगे तो आप जीवित नहीं रह सकेंगे । प्रार्थना एक आवश्यक आध्यात्मिक अनुशासन है । अनुशासन और समय ही हमें पशुओं से अलग करता है । यदि हम मनुष्य होना चाहते हैं, यदि हम चाहते हैं कि हम अपना मिर ऊँचा करके चले, पशु की भाँति हाथ-पैरों के बल न चले तो हमें चाहिए कि हम अपने को स्वेच्छा से अनुशासन और समय में बाँधें ।

प्रश्न—हमारे युवक वर्ग के माथ कठिनाई यह है कि विज्ञान और आधुनिक दर्शन के अध्ययन से उसकी आस्था नष्ट हो गई है और इसलिए वे नास्तिकता में फसे हैं ।

उत्तर—इसका कारण यह है कि वे आस्था को बुद्धि की वस्तु मानते हैं, आत्मा की अनुभूति नहीं । बुद्धि हमें जीवन सघर्ष में कुछ दूर तक ले जाती है किन्तु ऐन मौके पर वह हमारा साथ छोड़ देती है । आस्था बुद्धि के परे है । आस्था ऐसे अवसर पर सबसे अधिक चमकती है और हमें राह दिखाती है, जब क्षितिज पर घना अन्धकार छाया होता है और मानवीय बुद्धि हार जाती है । हमारे युवक वर्ग को इसी प्रकार की आस्था की आवश्यकता है और यह तब आती है जब मनुष्य बुद्धि के दम्भ को त्याग देता है और अपने को पूरी तरह ईश्वरेच्छा पर छोड़ देता है ।

बुद्धि से कही अधिक ऊँची कोई ऐसी चीज है जो हमारे जीवन का संचालन करती है, उनका भी जो सशय से भरे हैं । उनके जीवन के नाजुक मौकों पर उनका सशय और उनका दर्शन उनके काम नहीं आता । उनको उससे अच्छी कोई चीज चाहिए, कोई ऐसी चीज जो उनके बाहर की हो—जो उन्हें सहारा दे सके । इसलिए, यदि कोई मेरे सामने एक पहली रखता है तो मैं उससे कहता हूँ "जब तक तुम अपनी खुदी को मिटा नहीं देते तब तक तुम भगवान या प्रार्थना

गरीबों के लिए अर्थ ही अध्यात्म है। उनसे आधुनिक प्रगति की बात कीजिए। उनके सामने ईश्वर का नाम लेना व्यर्थ है और उनका अपमान करना है। यदि हम उनसे ईश्वर की बात करें तो वे मुझे और आपको राक्षस कहेंगे। यदि वे किसी ईश्वर को जानते भी हैं तो वह ईश्वर आतंक और प्रतिशोध का प्रतीक है, एक निर्मम अत्याचारी है।

वर्षों पहले मैंने एक कविता पढ़ी थी जिसमें किसान को ससार का पिता बताया गया था। यदि ईश्वर अन्नदाता है तो किसान उसका हाथ है। उसका हमारे ऊपर जो ऋण है उससे उन्मूलन होने के लिए हम क्या करने जा रहे हैं? अभी तक हम उसके पसीने के बल ही पलते रहे हैं?

इसका सुनहरा नियम है कि — जो चीजें करोड़ों लोगों को सुलभ नहीं हैं, उन्हें लेने से हम दृढतापूर्वक इनकार कर दें। अस्वीकार कर सकने की यह क्षमता हम में अचानक ही नहीं पैदा हो जाएगी। पहली चीज यह है कि हम अपने अन्दर ऐसी मनोवृत्ति उत्पन्न करें जिसे करोड़ों लोगों को सम्पत्ति और सुविधाओं से वंचित रखना स्वीकार न हो, और इसके बाद अगली चीज यह है कि हम अपनी इस मनोवृत्ति के अनुसार जितनी तेजी से सम्भव हो उतनी तेजी से अपने जीवन को बदलें।

यदि धनी लोग अपने धन का और धन से प्राप्त होने वाली शक्ति का स्वेच्छा से त्याग करके सबके लाभार्थ सबके साथ मिलकर उस धन और सत्ता का उपयोग नहीं करेंगे तो एक न एक दिन हिंसक और रक्तरेजित क्रांति का होना निश्चित है।

आज भयंकर आर्थिक विषमता फैली हुई है। समाजवाद का आधार आर्थिक समानता है। आज की अन्यायपूर्ण विषमता की स्थिति में, जहाँ चन्द लोगों के पास विपुल धन-वैभव है, और जनसाधारण को पूरा भोजन भी नहीं मिलता, राम राज्य स्थापित नहीं हो सकता।

मेरे लिए भारत की आर्थिक स्वतन्त्रता का अर्थ है, प्रत्येक स्त्री-पुरुष का स्वयं अपने प्रयत्न से, आर्थिक उत्थान। मेरी प्रणाली के अन्तर्गत सभी स्त्री-पुरुषों के पास पूरे वस्त्र होंगे—केवल लगेटी नहीं, बल्कि शरीर ढकने के लिए आवश्यक सभी वस्त्र—और उन्हें पूरा भोजन उपलब्ध होगा। इस भोजन में दूध और मक्खन भी शामिल हैं, जिससे आज करोड़ों लोग वंचित हैं।

मेरे अनुसार भारत का आर्थिक विधान, बल्कि यह कहूँ कि सारे विश्व का

आर्थिक विधान ऐसा होना चाहिए कि उममे किसी भी व्यक्ति को भोजन या वस्त्र का अभाव न हो । दूसरे शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति को इतना काम मिलना चाहिए कि वह अपनी आवश्यकता पूरी कर सकने योग्य धन कमा सके । यह आदर्श तभी साकार हो सकता है जब जीवन की बुनियादी जरूरत की वस्तुओं के उत्पादन के साधनों पर जनसाधारण का नियन्त्रण हो । ये वस्तुएँ सभी को उसी प्रकार सुलभ होनी चाहिए जिन प्रकार कि हवा और पानी सबको सुलभ हैं, अथवा होने चाहिए । इन्हें दूसरों के शोषण का साधन नहीं बनाया जाना चाहिए । बुनियादी जरूरत की इन चीजों पर किसी एक देश, राष्ट्र अथवा व्यक्तियों के किसी समूह का एकाधिकार अनुचित होगा । आज हम अपने इस अभाग्य देश में ही नहीं, बल्कि मसार के अन्य भागों में भी जो अभाव और दरिद्रता देखते हैं, वह इस सीधे-सादे सिद्धान्त की उपेक्षा के कारण ही है ।

मैं अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र में बड़ा भेद, बल्कि कोई भेद नहीं करता । वह अर्थनीति जो किसी व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचाती है, अनैतिक है और इस कारण पापपूर्ण है । इसी प्रकार जो अर्थनीति एक देश को दूसरे देश का शोषण करने की अनुमति देती है, वह अनैतिक है ।

“सभी व्यक्ति जन्मतः समान और स्वतन्त्र हैं,” यह बात शाब्दिक अर्थ में प्रकृति का नियम नहीं कही जा सकती । उदाहरण के लिए, सभी व्यक्ति एक-जैसी बुद्धि लेकर पैदा नहीं होते । लेकिन यदि प्रखर बुद्धि वाले लोग इस बुद्धि का प्रयोग दूसरों की हानि करके अपने लाभ के लिए न करके, कम बुद्धि वाले लोगों की सेवा में करें, तो समानता के सिद्धान्त की रक्षा हो जाएगी ।

धन जमा करने की कला के साथ ही यदि किसी व्यक्ति को उम्र धन का मनुष्य-पयोग करने की कला नहीं आती हो, तो धन जोड़ने की यह कला पतनकारी और जघन्य बन जाती है । — धनसंग्रह को पतन, बुराई और व्यभिचार का पर्याय मत बनने दीजिए ।

(“आप शौक से करोड़ों रुपये कमाइए । लेकिन समझ लीजिए कि आपका धन आपका नहीं है । वह जनता का है । अपनी उचित आवश्यकताओं के लिए जो जरूरी हो, उतना ले लीजिए और शेष धन का उपयोग समाज की भलाई में कीजिए ।” इस सत्य पर अभी तक आचरण नहीं किया गया है ।) लेकिन यदि

कठिनाई ये इन दिनों में भी धनवान लोग इस पर आचरण नहीं करेंगे तो वे अपने धन और अपनी भोगवृत्तियों के दास तथा परिणामस्वरूप उन लोगों के दास बनेंगे जो उन्हें अधिकारच्युत कर देंगे।

मैंने हमेशा कहा है कि मेरा आदर्श यह है कि पूजीपति और श्रमिक एक-दूसरे के पूरक बनें और एक-दूसरे की सहायता करें। वे एक बड़े परिवार की भांति एकता और मेल से रहें। पूजीपति लोग अपने अधीन कार्य करने वाले श्रमिकों के भले के लिए जिम्मेदार हैं, अतः उन्हें मजदूरों के भौतिक कल्याण का ही नहीं, बल्कि उनके नैतिक कल्याण का भी ध्यान रखना चाहिए।

कुछ करोड़पतियों को समाप्त कर डालने से ही गरीबों का शोषण समाप्त नहीं किया जा सकता। गरीब लोगों का अज्ञान मिटाकर और उन्हें अपने शोषकों के साथ असहयोग करना सिखाकर ही, उसे समाप्त किया जा सकता है। इससे शोषकों का हृदय भी परिवर्तित होगा। मैंने तो यहाँ तक कहा कि इसके परिणामस्वरूप गरीबों और अमीरों में हिस्सेदारी स्थापित हो जाएगी। पूजी स्वयं बुरी चीज नहीं है, इसका दुरुपयोग बुरी चीज है। किसी न किसी रूप में पूजी की आवश्यकता तो सदैव ही रहेगी।

मैं विभिन्न वर्गों में समानता लाना चाहता हूँ। पिछली अनेक सदियों से श्रमजीवी वर्ग को शोष समाज से अलग, हीन स्थिति में रखा गया है। ये शूद्र कहे गए और इस शब्द का अर्थ नीच दर्जा लगाया जाता है। मैं चाहता हूँ कि जुलाहे, किसान और अध्यापक के लड़के में कोई भेद न किया जाए।

मजदूरों को यह बात समझनी है कि श्रम भी पूजी है। जब मजदूर लोग अच्छी तरह शिक्षित और संगठित हो जाएंगे और अपनी शक्ति पहचान लेंगे तब बड़ी से बड़ी पूजी भी उन्हें दबा नहीं सकेगी। संगठित और प्रबुद्ध श्रमिक अपनी शर्तें मनवा सकते हैं। हम कमजोर हैं, इसलिए अपने प्रतिपक्षी से बदला लेने की कसम खाना बेकार है। हमें बलवान बनना है। बलवान हृदय, प्रबुद्ध मस्तिष्क और काम करने को तत्पर हाथ मिलकर सभी कठिनाइयों का सामना कर सकते हैं, सभी बाधाएँ मिटा सकते हैं।

मेरी समझ से पूजी और श्रम के बीच किसी संघर्ष की कोई जरूरत नहीं है। ये दोनों एक-दूसरे पर आश्रित हैं। आज जो चीज अत्यावश्यक है, वह यह कि पूजीपतियों को मजदूरों पर अत्याचार नहीं करना चाहिए। मेरी राय में

मिल-मजदूरो को अपनी मिलो पर उतना ही अधिकार है जितना कि मिल के भागीदारो को, और जब मिल-मालिक लोग यह समझ लेंगे कि मिल-मजदूर भी उसी हद तक मिलो के स्वामी हैं, जिस हद तक वे हैं, तब उन दोनों के बीच कोई झगडा नहीं रह जाएगा ।)

अहिंसक तरीके मे हम पूजीपतियो का नहीं, पूजीवाद का नाश करना चाहते हैं । हम पूजीपतियो से कहते हैं कि वे अपनी पूजी को पैदा करने, उसे बनाए रखने और उसकी बढ़ोतरी के लिए जिन लोगो पर निर्भर हैं, उन लोगो के हितो का अपने को ट्रस्टी मानें । मजदूरो को भी मिल-मालिको के हृदय-परिवर्तन की प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं है । यदि पूजी शक्ति है तो काम भी शक्ति है । दोनों ही शक्तियो का प्रयोग विध्वंस या रचनात्मक कार्यों के लिए हो सकता है । दोनों ही शक्तिया अन्योन्याश्रित हैं । अपनी शक्ति का ज्ञान होते ही श्रमिक इस स्थिति मे आ जाता है कि वह पूजीपति का दाम रहने के बजाय उमका भागीदार बन जाए । यदि वह पूजीपति को भाग न देकर पूरा कब्जा करना चाहता है तो वह गायद सोने के अण्डे देने वाली मुर्गी को ही मार डालेगा ।

(मशीनो का अपना एक महत्व है । वे रहेगी । लेकिन मशीनो को मनुष्य का स्थान नहीं लेने दिया जाना चाहिए ।) 31 (पृष्ठ 21) 57

एक मामूली ममझदार व्यक्ति होने के नाते मैं जानता हू कि मनुष्य उद्योगो के बिना नहीं रह सकता । इसलिए मैं औद्योगीकरण का विरोधी नहीं हो सकता । लेकिन मशीनी उद्योगो पर मैं बहुत चिंतित हू । मशीने बहुत तेजी से उत्पादन करती हैं, और इनके माय ही एक ऐसी आर्थिक प्रणाली स्थापित हो जाती है जिसे मैं समझ नहीं सकता । किसी चीज के कितने ही लाभ क्यों न हो, किन्तु जब मैं देखता हू कि इस चीज की हानिया इसकी अच्छाइयो से कहीं ज्यादा हैं तो मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता । मैं चाहता हू कि हमारे देश के करोडो लोग स्वस्थ और सुखी हो, और उनका आध्यात्मिक विकास हो । अभी हमें इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मशीनो की जरूरत नहीं है । हमारे यहा बहुत ज्यादा लोग बेरोजगार हैं । लेकिन जब हमारी समझ बढ़ेगी, और तब हमें मशीनो की जरूरत अनुभव होगी तो हम मशीनो को भी अपनाएंगे । हम उद्योग चाहते हैं, लेकिन हमें पहले उद्योगी बनना चाहिए । और अधिक आत्मनिर्भर बन लेने के बाद हम दूसरे लोगो का इतना अधिक अनुकरण नहीं करेंगे । यदि हमे मशीनो की जरूरत हुई

तब समय आने पर हम मशीनों का इस्तेमाल करेंगे। एक बार अपने जीवन को अहिंसा के साचे में ढाल लेने के बाद हमें मशीनों को नियन्त्रण में रखना आ जाएगा।

एक क्षण को यदि यह मान भी लें कि मशीनें मानव की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेगी, तो भी इनके द्वारा होने वाले उत्पादन विशिष्ट क्षेत्रों में केन्द्रित होंगे, जिसका नतीजा यह होगा कि वितरण का नियमन करने के लिए लम्बा-चौड़ा तरीका अपनाता होगा। इसके विपरीत जिन क्षेत्रों में जिन वस्तुओं की आवश्यकता है, वही उत्पादन और वितरण हो, तो वितरण का स्वतः ही नियमन हो जाएगा और चोरबाजारी और सट्टेबाजी की सम्भावना भी कम होगी। जब उत्पादन और खपत, दोनों स्थानीय तौर पर होने लगेंगे तो उत्पादन को अन्धाधुंध बढ़ाने का प्रलोभन भी नहीं रह जाएगा। आजकल की आर्थिक प्रणाली से जो बेशुमार कठिनाइयाँ और समस्याएँ खड़ी होती हैं, वे सब भी तब खत्म हो जाएंगी। हाँ, बड़े पैमाने पर उत्पादन अवश्य हो लेकिन (वैयक्तिक आधार पर) लोग अपने घरों में काम करके बड़े पैमाने पर उत्पादन करें। यदि आप एक व्यक्ति के उत्पादन को करोड़ गुणा कर दें तो क्या इससे बहुत बड़े पैमाने पर उत्पादन नहीं होगा। व्यापक पैमाने पर उत्पादन से आपका मतलब है कम से कम लोगों द्वारा अत्यन्त जटिल मशीनों की सहायता से उत्पादन। मैं ऐसी मशीनें चाहता हूँ जो अत्यन्त सीधी-सादी हों और जिन्हें मैं करोड़ों लोगों के घरों में लगा सकूँ।

“तो आप मशीनों के विरोधी इसी कारण हैं कि मशीनें उत्पादन और वितरण के साधनों को चन्द लोगों के हाथ में केन्द्रित कर देती हैं?”

“आप ठीक कहते हैं। मैं विशेषाधिकार और एकाधिकार से घृणा करता हूँ। जो चीज जनसाधारण के साथ नहीं बाँटी जा सकती वह मेरे लिए भी निषिद्ध है। वस इतनी ही बात है।”

“आप भारत का औद्योगीकरण नहीं करेंगे?”

“अवश्य करूँगा, अपने अर्थ में। किन्तु मैं एक अलग ढंग से गावों का औद्योगीकरण कर रहा हूँ।”

(मैं विज्ञान के ऐसे प्रत्येक आविष्कार को बहुमूल्य मानूँगा जिससे सभी लोगों को लाभ पहुँचे)

ऐसी हर मशीन के लिए स्थान है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को मदद मिलती हो । एक सुसंस्कृत मानव परिवार में श्रम का अपना अनोखा महत्व है ।

(मैं तो उन सभी सीधे-मादे औजारों और मशीनों का स्वागत करूँगा जिनसे व्यक्ति की मेहनत बचती है और करोड़ों झोपड़ियों का भार हल्का होता है) ।

मुझे मशीन से नहीं, बल्कि मशीन की 'खव्ज' से चिढ़ है । यह खव्ज तथाकथित श्रम बचाने वाली मशीनों की है । लोग श्रम बचाते चले जाते हैं, यहाँ तक कि हजारों लोग बेरोजगार होकर मारे-मारे फिरते हैं और भूख में मर जाते हैं । मैं मानव जाति के एक छोटे-से अंश का नहीं, बल्कि सभी मनुष्यों का समय और श्रम बचाना चाहता हूँ । मैं धन को एकत्र करना चाहता हूँ, लेकिन चन्द लोगों के हाथों में नहीं बल्कि सभी लोगों के हाथों में । आज मशीन का इतना ही उपयोग है कि उसकी सहायता से थोड़े-से लोग, करोड़ों लोगों का शोषण करते हैं । इसके पीछे लोगों की मेहनत बचाने की नेक भावना नहीं बल्कि लोभ की भावना काम कर रही है । यही है वह व्यवस्था जिसके विरुद्ध मैं अपनी पूरी शक्ति से संघर्ष कर रहा हूँ ।

"आप मशीनों के विरुद्ध नहीं बल्कि मशीनों के उस दुरुपयोग के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं जो आज चारों ओर दिखाई पड़ रहा है ।"

मैं वैज्ञानिक "हाँ" कहता हूँ, लेकिन इतना मैं और कहूँगा कि सबसे पहली शर्त यह है कि वैज्ञानिक खोज स्वार्थ और लालच की पूर्ति का साधन मात्र नहीं रहनी चाहिए । तब श्रमिकों से सामर्थ्य से अधिक काम नहीं लिया जाएगा और मशीनें बाधक बनने के बजाय मानव की सहायक सिद्ध होगी । मेरा उद्देश्य सभी मशीनों का उन्मूलन करना नहीं, बल्कि उनकी मर्यादा बाधना है ।

तर्कपूर्ण विवेचना करने पर मेरी डम वात से ये अर्थ निकलते प्रतीत होंगे कि सभी पेचीदा बड़ी-बड़ी शक्तिचालित मशीनों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए ।

मुमकिन है उन्हें जाना पड़े, लेकिन मैं एक बात स्पष्ट कर देना चाहूँगा । मनुष्य का कल्याण सर्वोपरि है । मशीनों के चलते मनुष्य अपग बन जाए, ऐसा नहीं होना चाहिए । उदाहरण के लिए, मैं कुछ मशीनों को अपवाद भी मानूँगा । जैसे सिंगर सिलाई मशीन को ही लीजिए । यह आधुनिक ईजाद की चन्द उपयोगी चीजों में से है । खुद इस मशीन की कहानी में एक प्रेमकथा है । सिंगर ने अपनी पत्नी को अपने हाथ से सिलाई और तुरपाई का कठिन काम करते देखा, और

उसके प्रति प्रेमवश, उसने उसको अनावश्यक मेहनत में बचाने के लिए सिलाई की मशीन ईजाद कर डाली । ओर उसने अपनी पत्नी की ही मेहनत नहीं, बल्कि उन सब लोगों की मेहनत बचा दी जो मशीन खरीद सकते हैं ।

लेकिन इन मिगर मशीनों को बनाने के लिए कारखाना होगा, और इस कारखाने में बड़ी-बड़ी शक्तिचालित मशीनें भी होंगी ही ।

(मैं समाजवादी भी हूँ और मैं कहूँगा कि ऐसे कारखानों का राष्ट्रीयकरण करना चाहिए या उन पर राज्य का नियन्त्रण होना चाहिए । इन्हें मुनाफे के लिए नहीं बल्कि मानवता के लाभ के लिए अत्यन्त आकर्षक और आदर्श परिस्थितियों में ही चलाया जाना चाहिए, और इन्हें चलाने के पीछे लोभ नहीं बल्कि प्रेम की प्रेरणा होनी चाहिए ।)

(मैं चाहता हूँ कि श्रमिकों की दया सुधरे । धन के लिए यह अन्धी दौड़ बन्द होनी चाहिए और श्रमिकों को न केवल जीविका के लिए पर्याप्त वेतन मिले बल्कि उन्हें ऐसा काम भी मिलना चाहिए जो केवल उदा देने वाला न हो । इन परिस्थितियों में मशीनों से न केवल उनके चलाने वालों को भी उतनी ही मदद मिलेगी जितनी कि राज्य को या उन मशीनों के मालिकों को । आज जो अन्धी दौड़ जारी है वह बन्द हो जाएगी और (जैसा कि मैंने कहा है) मजदूर लोग आकर्षक और आदर्श स्थिति में काम करेंगे । जो अनेक अपवाद मेरे मन में हैं, उनमें से यह तो केवल एक है । सिलाई की मशीन के पीछे प्रेम की प्रेरणा थी । मानव कल्याण सर्वोपरि है । व्यक्ति की मेहनत बचाना मशीन का उद्देश्य होना चाहिए, लोभ नहीं, बल्कि मच्चो मानवीय भावना उसकी प्रेरक शक्ति । लालच की जगह प्रेम को दे दीजिए तो सब-कुछ ठीक हो जाएगा ।)

(पूँजी अपनी वृद्धि के लिए कुछ लोगों के श्रम का शोषण करती है, किन्तु करोड़ों लोगों की मेहनत का यदि बुद्धिमानी से इस्तेमाल किया जाए तो करोड़ों लोगों के धन में अपने आप वृद्धि हो जाती है ।)

जो काम करना हो, उसको देखते यदि काम करने वाले आदमी कम हों, तब मशीनीकरण करना अच्छा है । लेकिन काम कम और आदमी ज्यादा हो, जैसा कि भारत में है, तब मशीनीकरण एक बुराई है । हमारे सामने समस्या इस बात की नहीं है कि हमारे गावों में रहने वाले करोड़ों लोगों को अवकाश का समय किस प्रकार दिया जाए । समस्या यह है कि इन लोगों के खाली वक्त का उपयोग

वैसे किया जाए, जो कि कुल मिलाकर साल भर में छ महीने के बराबर बैठता है।

लेकिन अच्छा हो या बुरा, पश्चिम के लोग औद्योगीकरण के जो अर्थ लगाते हैं उस अर्थ में भारत का औद्योगीकरण क्यों होना चाहिए ? पश्चिमी सभ्यता शहरी सभ्यता है। इंग्लैंड या इटली जैसे छोटे देश शहरी सभ्यता अपना सकते हैं। अमेरिका जैसा विशाल देश, जहाँ आबादी बहुत छिनगी-छिनगी फैली है, शायद इसके बिना कुछ नहीं कर सकता। लेकिन एक घनी आबादी वाले विशाल देश को, जिसकी प्राचीन ग्रामीण परम्परा अभी तक अपनी सार्थकता सिद्ध करती आई है, पश्चिमी देशों की नकल नहीं करनी चाहिए। जो चीज एक परिस्थिति में एक देश के लिए ठीक और अच्छी है, जरूरी नहीं कि वह एक दूसरे देश के लिए जहाँ परिस्थितियाँ भिन्न हैं, अच्छी हो। जो चीज एक आदमी को लाभ पहुँचाती है वही चीज दूसरे के लिए हानिकारक भी सिद्ध हो सकती है। किसी देश की संस्कृति के निर्माण में उसकी भौगोलिक स्थिति का बहुत बड़ा हाथ होता है। नुवी प्रदेश में रहने वाले लोगों के लिए रोएदार खालों के कोट पहनना अनिवार्य है, लेकिन भूमध्य रेखा के समीप रहने वाले यदि वही कोट पहनेंगे तो वे झुलस जाएंगे।

ईश्वर न करे कि भारत कभी पश्चिम के ढर्रे पर अपने यहाँ औद्योगीकरण करे। अकेले एक छोटे-से द्वीप (इंग्लैंड) का आर्थिक साम्राज्यवाद समार को जजीरो में जकड़े हुए है। यदि 30 करोड़ की आबादी वाला सारा देश इसी प्रकार का आर्थिक शोषण करने पर उताव्र हो गया तो सारे समार को उसी प्रकार चाट जाएगा जैसे टिड्डिया खेतों को चाट जाती है।

भारत में सात लाख गांव हैं जिनमें देश की 90 प्रतिशत आबादी रहती है। राष्ट्रीय आयोजन के विषय में जो प्रचलित विचार हैं, मेरे विचार उनसे भिन्न हैं। मैं आयोजन को औद्योगीकरण पर आधारित नहीं करना चाहता। मैं गांवों को औद्योगीकरण की छूट से बचाना चाहता हूँ।

नेहरूजी औद्योगीकरण चाहते हैं क्योंकि वह सोचते हैं कि यदि उसका ममाजीकरण कर दिया जाएगा तो वह पूँजीवाद की बुराइयों से मुक्त रहेगा। मेरा अपना मत है कि ये बुराइयाँ औद्योगीकरण में अन्तर्निहित हैं और ममाजीकरण से उनका उन्मूलन नहीं किया जा सकता।

मैं यह नहीं मानता कि किसी भी देश के लिए औद्योगीकरण हर हालत में जरूरी है। भारत के लिए तो और भी कम जरूरी है। वस्तुतः मेरा विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत सादा और ऊँचा जीवन अपना कर, हजारों गांव वालों की दशा सुधार कर और ससार के अन्य देशों के साथ शांतिपूर्ण सम्बन्ध रखते हुए ही पीड़ा से कराहते विश्व के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कर सकता है। उच्च विचारों का उस अधाधुन्य भाग-दौड़ के जटिल भौतिक जीवन से कोई मेल नहीं, जिसे रुपये-पैसे की पूजा ने हमारे ऊपर लाद दिया है। सादा और उदात्त जीवन जीने की कला सीख लेने के बाद जीवन के सभी वरदान सुलभ हो सकते हैं।

इसके साथ ही मेरा विश्वास है कि कुछ बुनियादी उद्योग आवश्यक हैं। मैं क्लावी समाजवाद में विश्वास नहीं करता, और न सशस्त्र समाजवाद में। मैं अपने विश्वास के अनुसार कार्य करने में विश्वास करता हूँ और इस बात की प्रतीक्षा नहीं करता कि और लोग पहले मेरे सिद्धान्त से सहमत हो जाएं तब कोई कार्य करूँ। अतः बुनियादी उद्योगों का नाम लिए बिना मैं उन सभी उद्योगों का राष्ट्रीयकरण चाहूँगा जिनमें बहुत सारे लोग मिलकर काम करते हैं। कुशल और अकुशल सभी प्रकार के मजदूरों की मेहनत से उत्पन्न होने वाली वस्तुओं पर राज्य के द्वारा उन्हीं मजदूरों का स्वामित्व होगा। लेकिन चूँकि मेरी कल्पना के अनुसार ऐसा राज्य केवल अहिंसा पर ही आधारित होगा, अतः मैं धनवान लोगों की 'धन-सम्पत्ति को बलपूर्वक छीनूँगा नहीं। निजी स्वामित्व के स्थान पर राज्य का स्वामित्व स्थापित करने में उनसे भी सहयोग मागूँगा। समाज में कोई अछूत नहीं है, चाहे वे लखपति हो या कगाल। ये दोनों एक ही रोग के लक्षण हैं। ओर सभी मनुष्य हैं।

समाजवाद एक सुन्दर शब्द है और जहाँ तक मैं जानता हूँ, समाजवाद में समाज के सभी सदस्य समान हैं—कोई ऊँचा नहीं है, कोई नीचा नहीं है। मनुष्य के शरीर में सिर शरीर का सबसे ऊपरी हिस्सा है, लेकिन वह इसी कारण ऊँचा नहीं हो जाता, और न पैर के तलवे भूमि छूने के कारण नीच है। जिस प्रकार मनुष्य शरीर के विभिन्न अंग समान हैं उसी प्रकार समाज के सदस्य भी समान हैं। यही समाजवाद है। /

इसमें रईस और किसान, धनी और गरीब, मालिक और मजदूर—ये सभी एक ही स्तर पर होते हैं। धार्मिक शब्दावली का प्रयोग करे तो कह सकते हैं कि

समाज में द्वैत नहीं है। अद्वैत ही अद्वैत है। लेकिन सारी दुनिया के समाज में द्वैत या अनेकता के सिवा कुछ नहीं दिखाई पड़ता। एकता का अभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। एकता की मेरी कल्पना के अनुसार अनेकताओं में भी पूर्ण एकता विद्यमान है।

ऐसी अवस्था को प्राप्त करना है तो हमें दार्शनिक भाव से निष्क्रिय बैठकर यह नहीं कहना चाहिए जब तक सब लोग समाजवाद के समर्थक नहीं हो जाते तब तक हमें कोई कदम उठाने की जरूरत नहीं है। हम अपने जीवन को बदले बिना भाषण देते जाएं, दलों की स्थापना करते जाएं और जब हमारे सामने कोई शिकार आए तब हम बाज की तरह झपट कर उसे दबोच लें। यह हो सकता है, लेकिन यह तो कोई समाजवाद नहीं है। जितना ही हम इसे झपट्टा मारकर दबोच लेने की वस्तु मानेंगे, उतना ही यह हमसे दूर होता जाएगा।

— समाजवाद का आरम्भ उसमें आस्था रखने वाले प्रथम व्यक्ति के साथ होता है। यदि ऐसा एक भी व्यक्ति है तो आप उस एक में शून्य जोड़ सकते हैं। एक के बाद का पहला शून्य एक को दस कर देगा और इसके बाद जुड़ने वाले प्रत्येक शून्य के साथ पहले की सख्या दस गुनी बढ़ती जाएगी। लेकिन यदि आरम्भ में शून्य है, अर्थात् यदि कोई व्यक्ति शुरुआत नहीं करता, तो शून्यों के जुड़ने से भी नतीजा शून्य ही निकलेगा। इन शून्यों को लिखना समय और कागज की बरबादी करना होगा।

यह समाजवाद स्फटिक की भांति निर्मल है। अतः इसे प्राप्त करने के लिए स्फटिक जैसे निर्मल साधनों की आवश्यकता है। अशुद्ध साधनों का नतीजा भी अशुद्ध निकलता है। इसलिए राजा का सिर काट डालने से राजा और रक्त समान नहीं बनाए जा सकते, और न सिर काटने से मालिक और मजदूरों में समानता स्थापित होगी। असत्य के जरिए सत्य तक नहीं पहुंचा जा सकता। क्या अहिंसा और सत्य जुड़वा नहीं हैं? जरूर हैं। अहिंसा सत्य में, और इसी प्रकार सत्य अहिंसा में निहित है। इसीलिए ऐसा कहा गया है कि ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ये दोनों एक-दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। सिक्के के दोनों तरफ पढ़िए—शब्दों के हिज्जे भिन्न होंगे, लेकिन मूल्य एक ही है। पूर्ण निर्मलता के बिना यह आनन्दमयी स्थिति प्राप्त नहीं की जा सकती। यदि आप अपने मन या शरीर में मल रहने देते हैं तो

आपके अन्दर असत्य और हिंसा भी अवश्य होगी ।

इसलिए केवल सत्यनिष्ठ, अहिंसक और निर्मल हृदय समाजवादी लोग ही भारत में और समार में एक समाजवादी समाज की स्थापना कर सकेंगे ।

समान वितरण का वास्तविक फलितार्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सभी प्राकृतिक आवश्यकताओं को पूरा करने की सुविधा और साधन उपलब्ध हो, लेकिन इससे अधिक नहीं । उदाहरण के लिए यदि एक मनुष्य का हाजमा कमजोर है और उसे भोजन के लिए आधा पाव आटे की जरूरत होती है और दूसरा व्यक्ति है जिसे आधा सेर आटा चाहिए, तो दोनों व्यक्तियों की ऐसी स्थिति होनी चाहिए कि वे अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर सकें । इस आदर्श को साकार रूप देने के लिए तमाम सामाजिक ढांचे को फिर से रचना पड़ेगा । अहिंसा पर आधारित समाज में किसी अन्य आदर्श का पोषण नहीं हो सकता । सम्भव है कि हम इस लक्ष्य को प्राप्त न कर सकें, लेकिन हमें इस ध्येय को सदैव अपने सामने रखना चाहिए और अनवरत रूप से उसकी ओर बढ़ने का प्रयत्न करते रहना चाहिए । हम इस लक्ष्य की ओर जितना ही बढ़ते जाएंगे उतना ही हमें सतोष और सुख प्राप्त होता जाएगा, और अहिंसक समाज की स्थापना में हम उसी हद तक योगदान भी दे सकेंगे ।

आइए, अब देखें कि अहिंसा के द्वारा मनुष्य में समान वितरण का ध्येय किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है । मनुष्य में पहला कदम तो यह है कि जिस व्यक्ति ने इस आदर्श को अपने जीवन का अंग बना लिया है वह अपने निजी जीवन में आवश्यक परिवर्तन करेगा । वह भारत की गरीबी को ध्यान में रखते हुए अपनी आवश्यकताओं को घटाकर कम से कम कर देगा । वह वैश्मानी से जीविका नहीं कमाएगा । वह सट्टेबाजी की इच्छा का त्याग कर देगा । उसका घर उसके जीवन के नए ढर्रे के अनुरूप होगा । वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आत्मसमय बरतेगा । अपने निजी जीवन में जितना कुछ सम्भव है उतना जब वह कर लेगा, तभी वह अपने साथियों और पड़ोसियों को इस आदर्श का उपदेश करने का अधिकारी होगा ।

वास्तव में इस समान वितरण के सिद्धान्त की तह में यह सिद्धान्त होना चाहिए कि धनवान लोगों के पास जो फाजिल धन है उसका वे अपने आपको ट्रस्टी मानें । क्योंकि इस सिद्धान्त के अनुसार वे अपने पड़ोसी के मुकाबले एक

रूपया भी अपने पाम ज्यादा नहीं रख सकते। यह किम प्रकार किया जाए ? अहिंसात्मक ढंग से ? या धनवानों से उनका धन और सम्पत्ति छीन ली जानी चाहिए ? इसके लिए हमें हिंसा का सहारा लेना पड़ेगा। इस हिंसात्मक कार्य में समाज को शामिल नहीं पहुँच सकता। इसमें तो समाज को नुकसान ही होगा क्योंकि वह एक ऐसा व्यक्ति खो बैठेगा जिसे मालूम है कि धन किम प्रकार जोड़ा जाता है। अतः स्पष्टतः अहिंसात्मक तरीका ही श्रेष्ठ है। धनवान व्यक्ति को अपना धन अपने पाम रखने दिया जाएगा, जिसमें से वह अपनी निजी आवश्यकताओं के लिए जितना उचित होगा उतना इस्तेमाल करेगा, और शेष धन का वह न्यायी होगा। यह शेष धन समाज के हित में खर्च किया जाएगा, इस दलील में यह बात मान ली गई है कि न्यायी पूरी तरह ईमानदारी वरतेगा।

फिर भी यदि सारी कोशिशों के बावजूद धनवान, मही अर्थों में गरीबों के सरक्षक नहीं बनते और यदि गरीब और भी पिछते जाते हैं और भूख मरने लगते हैं तब क्या किया जाए ? इस पहली का जवाब खोजने पर अहिंसा, असहयोग तथा सविनय अवज्ञा के मही एव अचूक तरीके मेरे हाथ लगे। अमीर लोग गरीबों की सहायता के बिना संपत्ति नहीं जमा कर सकते। यदि उनकी जानकारी गरीबों में फैले और उन तक पहुँच जाए तो वे ताकतवर हो उठेंगे और यह जान जाएंगे कि जिन विषमताओं ने उन्हें भुखमरी के द्वार तक पहुँचा दिया है उनसे अहिंसात्मक तरीकों से कैसे छुटकारा पाया जा सकता है।

पश्चिम का समाजवाद और साम्यवाद ऐसी धारणाओं पर आधारित हैं जो हमारी धारणाओं में बुनियादी तौर पर भिन्न हैं। उनको धारणा है कि मानव बुनियादी तौर पर स्वार्थी है। मैं ऐसा नहीं मानता क्योंकि मैं जानता हूँ कि आदमी और पशु में बुनियादी अन्तर यह है कि आदमी अपने अन्तःकरण की आवाज सुन सकता है और पशुओं के समान ही अपने अन्दर विद्यमान भोग-वृत्ति से ऊपर उठ सकता है और इसलिए वह स्वार्थपरता और हिंसा का गुणधर्म नहीं है। स्वार्थपरता और हिंसा पशु की प्रकृति के अंग हैं, मनुष्य की अमर आत्मा के नहीं। यह हिन्दू धर्म की मूल अवधारणा है जिसकी खोज वर्षों की तपश्चर्या और सयमित आचरण के बाद हो सकी है। यही कारण है कि हमारे यहाँ आध्यात्मिक रहस्यों की खोज के लिए शरीर गलाने और जीवनदान करने वाले सन्तों की कमी नहीं रही है जबकि पश्चिम की तरह

हमारे यहाँ ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं हुआ जिसने पृथ्वी के दूरस्थ अथवा सबसे ऊँचे स्थानों की खोज के लिए अपना जीवन निछावर किया हो । इसलिए हमारा समाजवाद या साम्यवाद अहिंसा और श्रम तथा पूँजी, जमींदार तथा किसान के घनिष्ठ सहयोग पर आधारित होना चाहिए ।

मैं नगो को, काम देने की जगह, जिसकी उन्हें बहुत आवश्यकता है, ऐसे कपड़े देकर जिनकी उन्हें आवश्यकता नहीं है उनका अपमान नहीं करूँगा । मैं उनका संरक्षक बनने का पाप नहीं कमाऊँगा । यह जानकर कि मैं उनके शोषण में सहायक बना हूँ, मैं उन्हें न तो रोटी के टुकड़े दूँगा, न उतारे हुए कपड़े । बल्कि अपने सर्वोत्तम भोजन और कपड़ों में उन्हें हिस्सेदार बनाऊँगा और काम में उनका हाथ बटाऊँगा ।

ईश्वर ने मनुष्य को इसलिए बनाया है कि वह अपनी रोजी-रोटी खुद कमाए । उसने कहा है कि जो काम किए बिना खाते हैं वे चोर हैं ।

जीविका के लिए मनुष्य को अवश्य काम करना चाहिए, यह सिद्धान्त मुझे तब हृदयगम हुआ जब मैंने रोटी की मेहनत पर टाल्सटाय के विचार पढ़े । लेकिन इसके भी पहले रस्किन की 'अनटु दिस लास्ट' नामक पुस्तक पढ़ लेने पर मैं इस सिद्धान्त का भक्त बन गया था । मनुष्य को अपना पेट भरने के लिए अपने हाथ से काम करना चाहिए, इस दैवी सिद्धान्त पर सबसे पहले एक रूसी लेखक टी० एम० बोडारेफ ने जोर दिया था । टाल्सटाय ने उसका प्रचार किया । मेरे विचार में गीता के तीसरे अध्याय में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है । गीता में कहा गया है कि जो मनुष्य बिना त्याग के भोजन करता है वह चोरी का अन्न ग्रहण करता है । यहाँ पर त्याग का केवल मेहनत से तात्पर्य है ।

तर्कबुद्धि से भी हम ऐसे ही निष्कर्ष पर पहुँचते हैं । कोई आदमी जो शारीरिक श्रम नहीं करता वह अन्न ग्रहण करने का अधिकारी कैसे है ? 'वाइबिल' में कहा गया है कि "तुम अपने पसीने की कमाई की ही रोटी खाओगे ।" एक लखपति भी यदि दिन भर विस्तर में पड़ा रहे और उसे भोजन भी कोई दूसरा खिलाए तो भी वह इस तरह बहुत दिन नहीं चल पाएगा और अपनी जिन्दगी से ऊँच जाएगा । इसलिए वह व्यायाम करके भूख को उत्तेजित करता है और इस तरह वह खाए हुए भोजन को पचाता है । यदि गरीब और अमीर सभी को किसी न किसी रूप में मेहनत करनी पड़ती है तो वह उत्पादक क्यों न हो ? वह रोटी

के लिए क्यों न की जाए ? किसान से तो कोई यह नहीं कहता कि वह प्राणायाम करे अथवा कपरन करे। दुनिया में औसतन 10 के पीछे 9 से भी अधिक लोग खेत जोत कर रोजी कमाते हैं। यह दुनिया कितनी अधिक सुखी और स्वस्थ हो जाएगी यदि वाकी व्यक्ति भी कम से कम अपनी रोजी कमाने के लिए मेहनत करने लगे। यदि ये लोग खेती के काम में हाथ बटाने लगे तो खेती से जुड़ी अनेक परेशानियां भी आसानी से दूर हो सकती हैं। जब रोजी कमाने के लिए श्रम करने का दायित्व सभी स्वीकार कर लेंगे—एक भी व्यक्ति इसका अपवाद न रहे—तो ऊँच-नीच के भेद-भाव मिट जाएंगे। यह बात सभी वर्गों के वारे में है। दुनिया में हर जगह पूजा और श्रम में सघर्ष है, और गरीब अमीरों से ईर्ष्या करते हैं। यदि सभी अपनी रोटी के लिए मेहनत करें तो पद या श्रेणी का अन्तर मिट जाएगा। अमीर तब भी होंगे लेकिन वे अपनी सम्पत्ति को न्यास (ट्रस्ट) समझे और उसका उपयोग मुख्य रूप से सार्वजनिक हित की दृष्टि से करेंगे।

जो व्यक्ति अहिंसा का आचरण, सत्य की भक्ति और ब्रह्मचर्य का पालन स्वाभाविक रूप में करेगा उसके लिए रोटी की मेहनत वस्तुतः एक वरदान है। यह मेहनत वास्तव में केवल खेती से सम्बन्धित हो सकती है। लेकिन कम से कम हर आदमी ऐसा कर सकने की स्थिति में नहीं है। इसलिए कोई व्यक्ति हमेशा खेती को आदर्श मानते हुए, चाहे तो कताई या दुनाई का काम अथवा बढईगीरी या लुहारी कर सकता है। हर आदमी को मल की सफाई का काम खुद करना चाहिए। मलत्याग उतना ही आवश्यक है जितना कि भोजन करना, इसलिए हर आदमी के लिए सबसे अच्छा तो यही है कि वह अपने लिए भगी का काम स्वयं करे। यदि यह असम्भव हो तो हर परिवार को इसकी व्यवस्था अपने आप करनी चाहिए। मैं वर्षों से अनुभव करता रहा हूँ कि इस व्यवस्था में कहीं कोई बड़ी गड़बड़ी जरूर है, जिसमें मल उठाने का काम समाज के एक अलग वर्ग को सौंप दिया गया है। पता नहीं किसने सफाई की इस आवश्यक सेवा को सबसे नीच काम माना है। वह चाहे कोई भी रहा हो उसने हमारा भला नहीं किया। हमें चाहिए कि बचपन से ही हम यह अनुभव करें कि हम सब मेहतर हैं और जिसने एक बार यह अनुभव कर लिया हो उसके लिए ऐसा करने का सबसे आसान तरीका यह है कि वह मेहतर के रूप में रोटी के लिए मेहनत करना शुरू कर

सरह, विवेक से मफाई का यह काम शुरू कर देने पर मनुष्य की को अनुभव करने में बड़ी सहायता मिलेगी ।

आर्थिक समानता हिंमारहित स्वाधीनता की कुजी है । आर्थिक समानता का प्रयास करने का अर्थ है पूँजी और श्रम के शाश्वत मघर्ष की समाप्ति करना । इसका मतलब है कि जिन कुछ अमीर लोगो के हाथ में राष्ट्र की अधिकतर सम्पत्ति केन्द्रित है उनका प्रभाव घटाना और दूसरी ओर लाखों भूखे और नगरे लोगो की आर्थिक स्थिति सुधारना । जाहिर है कि जब तक अमीरों और लाखों भूखे लोगो के बीच चीड़ी खाई मौजूद रहती है तब तक अहिंसा पर आधारित सरकार कायम करना असम्भव है । नई दिल्ली की आलीशान इमारतों में और गरीबों की दयनीय झुग्गियों-झोपड़ियों में जो भारी विरोधाभास है वह स्वाधीन भारत में, जहाँ गरीबों को भी उतने ही अधिकार होंगे जितने कि सबसे अमीर व्यक्ति को, एक दिन भी नहीं टिक सकेगा । यदि सम्पत्ति और सम्पत्तिजन्य सत्ता का त्याग खुद नहीं किया जाएगा और सार्वजनिक कल्याण के लिए दूसरों को उसमें साक्षीदार नहीं बनाया जाएगा तो एक दिन हिंसात्मक और खूनी क्रांति अवश्य होकर रहेगी ।

“मैं आपको एक मंत्र देता हूँ । जब भी आपको सन्देह हो, या जब आप बहुत आत्मलिप्त हो जाएँ तो आप इसे आजमाएँ । किसी ऐसे सबसे गरीब अथवा कमजोर व्यक्ति का चेहरा याद करें जिसे आपने देखा हो और अपने से पूछें जो कदम आप उठाने जा रहे हैं, क्या उसे इससे कोई लाभ होगा ? क्या इसकी सहायता से वह अपने जीवन और भाग्य का नियन्त्रण बन सकेगा ? दूसरे शब्दों में, क्या वह कदम भूखे पेट और आध्यात्मिक भूख से मारे लोगो के लिए स्वराज स्थापित करने में सहायक होगा ? तब आप देखेंगे कि आपकी शकाएँ और आपका स्वार्थ मिटता जा रहा है ।”

6. राष्ट्र के हित के लिए

(क) भारत का लक्ष्य क्या है ?

भारत मेरे लिए दुनिया का सबसे प्यारा देश है, इसलिए नहीं कि वह मेरी मातृभूमि है बल्कि इसलिए कि मैंने सबसे ज्यादा अच्छाई इसी में पाई है

भारत की हर चीज मुझे आकर्षित करती है । भारत के पास वह सभी कुछ है, जिसकी उच्चतम आकांक्षा की जा सकती है ।

भारत कर्मभूमि है न कि भोगभूमि ।

यदि हम हिंसा किए बिना मरने का पाठ सीख ले तो भारत, जो दन्तकथाओं और इतिहास में कर्मभूमि कहा गया है, पृथ्वी पर स्वर्ग बन सकता है ।

यदि भारत हिंसा के मार्ग पर चलता है तो भारत में रहना मुझे नहीं भाएगा । तब मुझे भारत पर गर्व नहीं होगा । मेरी देशभक्ति मेरे धर्म से ऊपर नहीं है । मैं भारत से उसी तरह चिपका हूँ जैसे बच्चा माँ के सीने से चिपका रहता है क्योंकि मुझे लगता है कि वह मुझे वह आध्यात्मिक पोषण देता है जिसकी मुझे आवश्यकता है । भारत में वह वातावरण है जो मेरी सर्वोच्च आकांक्षाओं के अनुकूल है । जब वह विश्वास उठ जाएगा तब मुझे लगेगा कि मैं अनाथ हो गया हूँ ।

यह मेरा पक्का विश्वास दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है कि हम इस सतप्त देश को केवल सद् आचरण से, यानी दूसरे शब्दों में सत्य और अहिंसा द्वारा ही सुखी बना सकते हैं ।

मैं विनयपूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि यदि भारत सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चल कर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सका तो विश्व शांति में उसका बहुत बड़ा योगदान होगा । सभी देश विश्व शांति के लिए तरस रहे हैं । इस काम में सहायक बन कर भारत अन्य देशों की मुफ्त सहायता का थोड़ा-बहुत बदला दे सकेगा ।

मैं हृदय से महसूस करता हूँ कि दुनिया खून खराबी से आजिज़ आ चुकी है । दुनिया इससे उबरने का रास्ता खोज रही है । मुझे अपने इस विश्वास पर गर्व होता है कि तड़पती दुनिया को रास्ता दिखाने का श्रेय इस प्राचीन देश भारत को ही प्राप्त होगा ।

मेरा विश्वास है कि भारत में जो सभ्यता विकसित हुई है वह दुनिया में किसी से पराजित नहीं होगी । हमारे पूर्वजों ने जो बीज बोया है उसकी बराबरी और कोई नहीं कर सकता ।

भारत का लक्ष्य पश्चिम के रक्तरजित मार्ग से नहीं वनिक शांति के रक्तहीन मार्ग से प्राप्त हो सकता है । यह शांति सरल और दिव्य जीवन से मिलती है । पश्चिम अपनी हिंसा के मार्ग से खुद ऊब चुका है । खतरा है कि कहीं भारत की आत्मा मर न जाए । वह उसे खोकर जीवित नहीं रह सकता । इसलिए उसे आलस्य या निराशा से यह नहीं कहना चाहिए “मैं पश्चिम के प्रभाव से अछूता नहीं रह सकता ।” लेकिन भारत को स्वयं अपनी खातिर और इस मारी दुनिया की भी खातिर इतना मजबूत होना चाहिए कि वह उसका विरोध कर सके ।

मैं नम्रतापूर्वक स्वीकार करता हूँ कि पश्चिम में काफी कुछ ऐसा है जिसे पचा लेना हमारे लिए लाभकर हो सकता है । बुद्धि पर किसी एक महाद्वीप या जाति का एकाधिकार नहीं होता ।

यूरोपीय सभ्यता नि सन्देह यूरोपवासियों के अनुकूल है लेकिन यदि हमने उसकी नकल करने की कोशिश की तो हम बरबाद हो जाएंगे । इसका यह मतलब नहीं है कि इसमें जो अच्छा है और जिसे हम हजम कर सकते हैं उसे हम अंगीकार न करें या उसे पचा न लें, और न इसका यह अर्थ है कि स्वयं यूरोपीयों को वे बुराईयाँ नहीं छोड़नी पड़ेगी जो उनकी सभ्यता में घुस आई हैं । भौतिक सुखों की निरन्तर खोज और उनकी वृद्धि ऐसी ही बुराई है और मैं कह सकता हूँ कि एक दिन खुद यूरोपवासियों को अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करना पड़ेगा वरना वे उन सुविधाओं के बोझ के नीचे दब जाएंगे जिनके वे गुलाम बन गए हैं— हो सकता है कि मेरी राय गलत हो, लेकिन इतना मैं जानता हूँ कि भारत यदि स्वर्ण मृग के पीछे भागेगा तो वह निश्चय ही अपनी मौत को निमन्त्रण देगा । हमें एक पश्चिमी दार्शनिक का यह सिद्धान्त हृदयगम कर लेना चाहिए “सादा जीवन उच्च विचार ।” आज यह बात तय है कि करोड़ों लोग अमीरी का जीवन नहीं बिता सकते और हम जो थोड़े-से लोग जनता के लिए सोच-विचार करने का दम भरते हैं, वे धन कमाने की मृग तृष्णा में उच्च विचारों से भी हाथ धो बैठते हैं ।

पश्चिम से जो प्रकाश मिल सकता है, उसका लाभ उठाने से मुझे कोई रोक नहीं सकता । मुझे केवल यह सावधानी बरतनी पड़ेगी कि मैं पश्चिम की चमक-

दमक के बशीभूत न हो जाऊ। मुझे ऊपरी चमक-दमक को वास्तविक प्रकाश मान बैठने की गलती से वचना चाहिए।

मैं नहीं चाहता कि मेरे घर के चारों ओर दीवारें खड़ी कर दी जाए और मेरी खिड़किया बन्द कर दी जाए। मैं चाहता हूँ कि सभी देशों की सभ्यताओं का मेरे घर में स्वच्छन्द रूप से प्रवेश हो। लेकिन मैं किसी भी सभ्यता की आधी में अपने पैर नहीं उखड़ने दूंगा। मैं दूसरों के घर में एक घुमपैठिया, भिखारी या दाम की तरह नहीं रहना चाहता।

हमें गलत तुलनाओं में नहीं उलझ जाना चाहिए। यूरोपीय लेखकों के पास अनुभव और सही जानकारी का अभाव है। यदि वे यूरोपीय उदाहरणों के आधार पर सामान्य निष्कर्ष निकालें, तो एक सीमा के बाद वे हमारा मार्गदर्शन नहीं कर सकते, क्योंकि यूरोपीय उदाहरण भारतीय परिस्थितियों पर लागू नहीं हो सकते। कारण यह कि यूरोप में भारत-जैसी परिस्थितियाँ नहीं हैं, रुम को छोड़ दे, तो भी नहीं।

इसलिए यूरोप के बारे में जो बात सच है वह जरूरी तौर पर भारत के बारे में सही नहीं होगी। फिर हम यह भी जानते हैं कि हर राष्ट्र की अपनी विशिष्टता होती है, अपना व्यक्तित्व होता है। भारत का अपना व्यक्तित्व है, और यदि हमने भारत की अनेक बुराइयों के सही समाधान खोजने हैं तो हमें स्वभाव का ध्यान रख कर ही उसका समाधान सुझाना पड़ेगा। मेरा दावा है कि यूरोप की तरह भारत का औद्योगीकरण, असम्भव को सम्भव बनाने की कोशिश करना है। भारत बहुत-से आधी-तूफान देख चुका है। यह भी सही है कि इनमें से हर एक ने अपनी अमिट छाप छोड़ी है, लेकिन अभी तक वह निर्भय होकर अपना व्यक्तित्व बनाए रख सका है। भारत दुनिया के उन गिने-चुने राष्ट्रों में से है जिन्होंने अनेक सभ्यताओं का पतन देखा है, लेकिन वह स्वयं बचा रहा है। भारत दुनिया के उन थोड़े-से देशों में है, जो अपनी पुरानी सभ्यता को जीवित रख सका है, हालांकि इन पर अन्धविश्वासों और बुराइयों की परत चढ़ गई है। लेकिन अभी तक भारत बुराइयों और अन्धविश्वासों को दूर करने की सहज क्षमता का परिचय देता रहा है। भारत में अपनी आर्थिक समस्याएँ जो लाखों भारतवासियों के सामने मुँह बाएँ खड़ी हैं, हल कर सकने की क्षमता है—मेरा यह विश्वास आज जितना दृढ़ है उतना पहले कभी नहीं था।

यूरोप में जो गटबडी चल रही है वह बताती है कि आधुनिक सभ्यता बुराई और अन्धकार की शक्तियों की प्रतिनिधि है जबकि प्राचीन यानी भारतीय सभ्यता मूलतः दैवी शक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। आधुनिक सभ्यता मुख्यतः भौतिकवादी है जबकि हमारी मुख्यतः आध्यात्मिक है। आधुनिक सभ्यता प्रकृति के नियमों के अन्वेषण में सलग्न है और मानवीय सूझ-बूझ को उत्पादन के साधनों और विनाश के शस्त्रों की खोज या आविष्कार की ओर लगाती है, हमारी सभ्यता मुख्यतः आध्यात्मिक सिद्धान्तों की खोज में व्यस्त रहती है।

हमारे शास्त्र असदिग्ध रूप से यह प्रतिपादित करते हैं कि सत्य, ब्रह्मचर्य, जीव-दया, दूसरे की सम्पत्ति का लोभ न करना, दैनिक आवश्यकताओं के अलावा वस्तुओं का संग्रह न करना, मद्जीवन के लिए अपरिहार्य है, और इनके बिना (दैवी तत्व) का ज्ञान अमम्भव है। हमारी सभ्यता निश्चयपूर्वक बताती है कि व्यावहारिक रूप में अहिंसा के सही और पूरी तरह से पालन करने का अर्थ है शुद्धतम प्रेम और दया जिससे सारा ससार हमारे सामने नतमस्तक हो जाएगा। इस सत्य के अन्वेषक ने अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, जिनसे उस पर विश्वास जम जाता है। याद रहे कि अहिंसा के पालन के लिए यह जरूरी नहीं कि दूसरा भी अहिंसा करे, यद्यपि सच तो यह है कि अहिंसा की चरम अवस्था में दूसरा व्यक्ति भी अहिंसा का पालन करने लगता है। बहुत-से भारतीयों का, जिनमें से एक मैं भी हूँ, विश्वास है कि हमें अपनी सभ्यता के जरिए ससार को एक सन्देश देना है।

(ख) भारत एक राष्ट्र है

मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि हम लोग एक राष्ट्र या देश थे अतः हम लोगों में अन्तर नहीं थे। मेरा कहना यह है कि हमारे नेता और मुखिया लोग पैदल या बैलगाड़ियों द्वारा पूरे भारत की यात्रा करते थे। उन्होंने एक-दूसरे की भाषाएँ सीखी और उनमें आपस में कोई दुराव नहीं था। आखिर हमारे दूरदर्शी पूर्वजों ने दक्षिण में सेतुबन्ध (रामेश्वर), पूर्व में जगन्नाथ तथा उत्तर में हरिद्वार में, किस अभिप्राय से तीर्थों की स्थापना की? यह तो आप मानेंगे कि वे मूर्ख नहीं थे। वे जानते थे कि ईश्वर की उपासना घर में भी की जा सकती है। उन्होंने हमें यह सिखाया कि जिनका हृदय पवित्र होता है उनके घर में ही गंगा बहती है। परन्तु उन्होंने देखा कि प्रकृति ने ही भारत को एक अखण्ड देश बनाया है, इसलिए उनका

यह विश्वास था कि भारत को एक राष्ट्र बनना चाहिए और इसी धारणा के साथ उन्होंने देश के विभिन्न भागों में तीर्थों की स्थापना की। और हम भारतीयों में जैसी एकता है वैसी दो अंग्रेजों में भी नहीं होती। केवल जाप और मैं तथा कुछ अन्य लोग जो अपने को मध्य तथा उच्च समझते हैं वे ही ऐसा सोचते हैं कि हम लोग एक नहीं, अनेक राष्ट्रों के हैं।

भारत में विभिन्न धर्मों के लोग निवास करते हैं इसलिए वह एक राष्ट्र नहीं हो सकता, यह तक गलत है। विदेशियों के समावेश में यह जरूरी नहीं कि राष्ट्र नष्ट हो जाए, वे तो उसमें घुल-मिल जाते हैं। कई देश एक राष्ट्र नहीं हो सकते हैं जब उसमें ऐसी स्थिति विद्यमान हो। उस देश में आत्ममात् करने की शक्ति होनी चाहिए। भारत मदा में ऐसा ही देश रहा है। वास्तव में, जिनके व्यक्ति होते हैं, उतने ही उनके धर्म होते हैं। परन्तु जिनमें राष्ट्रीयता की भावना होती है वे एक-दूसरे के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करते। यदि हिन्दुओं की यह धारणा है कि भारत में केवल हिन्दुओं को ही रहना चाहिए तो वे स्वर्गलोक में हैं। हिन्दू, मुसलमान, पारसी तथा ईसाई जिन्होंने भारत को अपना देश बना लिया है, वे सब इस एक ही देश के वासी हैं और उन्हें यदि और किसी कारण से नहीं तो कम से कम अपने ही हित के लिए मिल-जुलकर रहना पड़ेगा। दुनिया के किसी भी भाग में वहाँ के रहने वाले सभी लोगों का एक ही धर्म हो, ऐसी बात नहीं है और भारत में भी ऐसा कभी नहीं रहा है।

हिन्दू और मुसलमान दोनों भारत की सतान हैं। हमारी देहधारिणी माता जो हमें जन्म देती है, हमारे आदर तथा पूजा की अधिकारिणी होती है। इस तरह की पूजा आत्मा को पवित्र बनाती है। तो फिर हमारी अमर माता, मातृभूमि, जिस की गोद में हमने जन्म लिया है, और जिसकी गोद में ही हम प्राण त्यागेगे, हम सब लोगों की भक्ति तथा श्रद्धा की कितनी ओर भी अधिक अधिकारिणी है। वे सब लोग जो इस देश में जन्मे हैं और जो इसे अपनी मातृभूमि मानते हैं, वे चाहे हिन्दू हो या मुसलमान या पारसी या ईसाई, जैन या सिख, वे सब समान रूप में उसकी सतान हैं और इसलिए वे भाई-भाई हैं और खून में भी ज्यादा मजबूत बन्धन में एक-दूसरे से बंधे हुए हैं।

हिन्दुस्तान उन सब लोगों का है जिनका यहाँ जन्म हुआ है, पालन-पोषण हुआ

है और जिनका किसी अन्य देश में कोई आसरा नहीं है। अतः यह जितना हिन्दुओं का है उतना ही पारसियों, वेनी इसराइलियों, भारतीय ईसाइयों, मुसलमानों तथा अन्य गैर-हिन्दुओं का भी है। स्वतन्त्र भारत हिन्दू राज नहीं बल्कि भारतीय राज होगा जो किसी एक धार्मिक सम्प्रदाय के बहुमत पर नहीं बल्कि बिना किसी धार्मिक भेदभाव के समस्त जनता के प्रतिनिधियों पर आधारित होगा। मैं एक मिले-जुले बहुमत की कल्पना कर सकता हूँ जिसमें हिन्दुओं का अल्पमत हो। वे अपनी सेवा तथा योग्यताओं के रिकार्ड के आधार पर चुने जाएंगे। धर्म व्यक्तिगत मामला है जिसका राजनीति में कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

(भाषावार) राज्यों के गठन से भारत की एकता नहीं टूटनी चाहिए। स्वायत्तता का अर्थ विघटन नहीं होता और न होना चाहिए, और न इसका यह अर्थ है कि इसके बाद राज्य एक-दूसरे का तथा केन्द्र का बिना खयाल किए जैसा चाहे वैसा करे। यदि हर राज्य अपने को अलग सार्वभौम समझने लगेगा तो भारत की स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा और साथ ही विभिन्न प्रान्तीय इकाइयों की स्वतन्त्रता भी समाप्त हो जाएगी।

दूसरे देशों के लोग हमें गुजराती, मराठी, तमिल आदि के रूप में नहीं बल्कि केवल भारतीयों के रूप में जानते हैं।

इसलिए हमें समस्त विघटनकारी प्रवृत्तियों को दृढ़तापूर्वक दबाना चाहिए और अपने को भारतीय समझना चाहिए तथा उसी के अनुरूप आचरण करना चाहिए।

एक स्वस्थ ढंग की प्रान्तीयता होती है और हमेशा रहेगी। यदि राज्यों के बीच विभिन्नताएँ न होती—यद्यपि ये विभिन्नताएँ स्वस्थ होनी चाहिए—तो अलग-अलग राज्यों का बनाना निरर्थक होता। परन्तु हमारी प्रान्तीयता सकुचित अथवा एकात्मिक कदापि नहीं होनी चाहिए। वह समूचे देश के हित के अनुकूल होनी चाहिए क्योंकि राज्य तो देश के केवल अंगमात्र हैं। उनकी (राज्यों की) तुलना एक विशाल नदी की सहायक नदियों से की जा सकती है। सहायक नदियाँ उसकी विशालता को बढ़ाती हैं। उनकी ताकत तथा शान महानदी के शानदार प्रवाह से प्रतिबिम्बित होगी। राज्यों की ऐसी ही स्थिति होनी चाहिए। राज्य जो भी काम करे, उससे समूचे देश का गौरव बढ़ना चाहिए। यदि रवीन्द्रनाथ की

अमरकृतिया वगाल को गौरवान्वित करती हैं तो वह भारत को भी गौरव प्रदान करती हैं। क्या उनका प्रभाव भारत भर में व्याप्त नहीं है? दादाभाई केवल पारसियों के लिए अथवा केवल बम्बई के लिए नहीं बल्कि पूरे भारत के लिए जिए। इसलिए राज्यों के बीच ईर्ष्या अथवा अलगाव की कोई गुजाइश नहीं है वरना भारत आपस में लड़ने वाले देशों में बंट जाएगा जिनमें से प्रत्येक केवल अपने लिए ही जीवित रहेगा और सम्भव हुआ तो अन्यो को नुकसान भी पहुँचाएगा। यदि इस तरह की विपत्ति भारत पर आती है तो कांग्रेस का अब तक का काम ही व्यर्थ हो जाएगा। भारत को ऐसे विभिन्न भागों में बांटने की, जिनमें परस्पर कोई सम्बन्ध न हो, हर कोशिश का विरोध किया जाना चाहिए। भारत का लक्ष्य एक मजबूत, स्वतन्त्र राष्ट्र बनना तथा विश्व की उन्नति में अपना अनूठा योगदान देना है। हमारी देशभक्ति किसी भी अवस्था में एकात्मिक नहीं है। हम विश्व के अन्य राष्ट्रों को नुकसान पहुँचा कर अपनी खुशहाली नहीं चाहते। एक ऐसा समय अवश्य आना चाहिए जब हम यह कह सकें, “हम जितने भारत के नागरिक हैं उतने ही विश्व के नागरिक भी हैं।” लेकिन ऐसा समय तब तक कदापि नहीं आएगा जब तक कि हम स्वतन्त्र भारत के नागरिक बनने की कला नहीं जान लेते। यदि हम जहरीली प्रान्तीयता को विकसित करते हैं तो हम इस कला को कभी नहीं सीख सकते। सच्चे राष्ट्रीय जीवन की गुरुआत व्यक्ति से ही होती है। मैं ताकतवर तथा आजाद होना चाहता हूँ, जिससे न केवल मैं बल्कि मेरा पड़ोसी भी मेरी ताकत तथा आजादी से फायदा उठा सके। हमें व्यक्ति अथवा राज्य दोनों हैसियत से मातृभूमि की वेदी पर सबसे अच्छा अर्घ्य अर्पित करना चाहिए।

जातिभेद ने हमारे अन्दर इतनी गहरी जड़ जमा ली है कि मुसलमान, ईसाई, तथा भारत के अन्य धर्मावलम्बी भी उससे अछूते नहीं बचे हैं। यह सच है कि वर्गभेद कम या ज्यादा किसी न किसी अंश में दुनिया के अन्य भागों में भी पाए जाते हैं, अर्थात् यह एक ऐसा रोग है जो पूरी मानव जाति में व्याप्त है। इसका उन्मूलन सच्ची धार्मिक भावना जगा कर ही किया जा सकता है। मैंने किसी भी धर्म के ग्रन्थों में इस प्रकार के भेदभाव का समर्थन नहीं पाया है।

धर्म की निगाह में सब मनुष्य समान हैं। कोई व्यक्ति विद्या, बुद्धि अथवा धन के कारण उन व्यक्तियों से बड़ा होने का दावा नहीं कर सकता जिनमें इन चीजों

का अभाव है। यदि कोई व्यक्ति सच्ची धर्म भावना से भर गया है और उसकी आत्मा निर्मल हो गई है, तो वह अपना कर्तव्य समझेगा कि उसके जीवन से उन लोगों को भी लाभ पहुँचे जिनका जीवन अभी उतना उन्नत नहीं हुआ है।

जाति तथा प्रान्तीयता की दोहरी दीवार को तोड़ना चाहिए। यदि भारत एक और अखण्ड है तो निश्चय ही इसमें ऐसे कृत्रिम विभाजन नहीं होने चाहिए जिनसे अनेक छोटे-छोटे समूह बन जाए जो न तो एक-दूसरे के साथ खान-पान का सम्बन्ध रखे और न आपस में शादी-विवाह करे। इस अलगाव के पीछे कोई धार्मिक भावना नहीं है। डम दलील से काम नहीं चलेगा कि परिवर्तन की शुरुआत एक व्यक्ति नहीं कर सकता और उसे तब तक प्रतीक्षा करनी होगी जब तक कि पूरा समाज तैयार नहीं हो जाता। कोई भी सुधार तब तक नहीं हुआ है, जब तक कि कुछ निर्भीक व्यक्तियों ने अमानुषिक रीति-रिवाजों को नहीं तोड़ा है।

एकता क्या चीज है और उसे किम तरह बढ़ाया जा सकता है? इसका उत्तर सीधा-सादा है। एकता के लिए आवश्यक यह है कि हम सब लोगों का उद्देश्य एक हो, लक्ष्य एक हो तथा हमारी तकलीफें भी एक समान हों। एकता को प्राप्त करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि एक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे के साथ सहयोग किया जाए, दूसरों के दुखों में हिस्सा बटाया जाए और परस्पर सहिष्णुता बरती जाए।

सारे समार पर इस बात का बड़ा प्रभाव पड़ा है कि भारत ने बिना रक्तपात के स्वतन्त्रता प्राप्त की है। हमें अपने सही आचरण द्वारा अपने को उस स्वतन्त्रता के योग्य बनाना है।

मैं चाहूँगा कि मेरे स्वप्नों का भारत, ऐसे नवजीवन की नींव डाले जो उसके स्वाभाविक वातावरण के अनुकूल हो। सर्वोत्तम समाज की स्थापना नवभारत का सबसे बड़ा लक्ष्य होना चाहिए।

॥ भारत अब स्वतन्त्र है, और अब वास्तविकता मेरे सामने विल्कुल स्पष्ट है। अब चूँकि परतन्त्रता का बोझ हट गया है अतः ममस्त अच्छी शक्तियों को एक ऐसे देश का निर्माण करने के महान प्रयाम में लगाना है जो मनुष्यों के झगड़ों के, चाहे वे दो राज्यों के बीच हों अथवा एक ही देश की जनता के दो वर्गों के बीच

हो, निपटारे के लिए हिंसा के तरीको को नहीं अपनाना । मुझे अभी भी विश्वास है कि भारत इस आशा को पूरा करेगा और विश्व के समक्ष यह मित्र कर देगा कि दो नए राज्यों की स्थापना गैर मानव जाति के लिए अनिष्ट नहीं बरन् वरदान मित्र होगी ।

भारत में यदि किसी अल्पमध्यक धार्मिक संप्रदाय को, इसलिए छोटेपन का भान कराया जाता है क्योंकि वह अल्पमध्यक है, तो मैं यही कह सकता हूँ कि ऐसा भारत मेरे स्वप्नो का भारत नहीं है । जिस भारत के निर्माण के लिए मैंने जीवन भर काम किया है उसमें हर एक व्यक्ति को, चाहे उसका जो भी धर्म हो, समानता का पद प्राप्त होगा । राज्य को पूर्ण रूप से धर्मनिरपेक्ष रहना जरूरी है । मेरा तो यहाँ तक कहना है कि किसी भी विशिष्ट धर्म जयवा जाति की किसी भी शिक्षा संस्था को राज्य का संरक्षण प्राप्त नहीं होना चाहिए ।

धर्मभीरु लोगों के लिए सभी धर्म अच्छे तथा समान होते हैं । विभिन्न धर्मों के अनुयायी एक-दूसरे से लड़ते हैं और इस प्रकार वे अपने धर्मों के प्रतिभूल आचरण करते हैं । मैं आशा करता हूँ कि भारतीय मध्य के लोग अपने धर्म के योग्य अधिकारी बनेंगे और अपने को एक ही मातृभूमि के बेटे तथा बेटियाँ कहलाने में गर्व का अनुभव करेंगे और कानून के सामने सबकी समान स्थिति होगी । धर्म राष्ट्रीयता की कसाँटी नहीं, बरन् वह मनुष्य तथा उसके ईश्वर के बीच एक व्यक्तिगत मामला है । वे चाहें जिन भी धर्म के मानने वाले हों, राष्ट्रीयता की दृष्टि से वे भारतीय ही हैं ।

(ग) मेरे सपनों का भारत

मैं एक ऐसे भारत को बनाऊँगा जिसमें गरीब से गरीब भी यह अनुभव करेंगे कि यह उनका देश है, जिसके निर्माण में उनकी आवाज का महत्व है, जिसमें उच्च-नीच नहीं होगी, जिसमें सभी संप्रदाय पूरी तरह मिल-जुलकर रहेंगे । ऐसे भारत में अस्पृश्यता और नशाखोरी जैसी बुराइयों के लिए कोई स्थान न होगा । स्त्रियों को भी वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को । हम सारे समाज के साथ शांति और मेल रखेंगे । न तो हम किसी का शोषण करेंगे और न अपना शोषण होने देंगे, अतः हमें, जितनी कम से कम सेना की कल्पना की जा सकती है उतनी ही रखनी चाहिए । सभी के हितों की, चाहे वे भारतीयों के हों या विदेशियों के, पूरी

रक्षा की जाएगी वशर्ते वे लाखों-करोड़ों निरीह जनता के हितों के विरुद्ध न हों। मैं स्वयं देशी-विदेशी का भेद नहीं करता। मेरे सपनों का भारत यह है। इससे कम से मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकता।

मेरे स्वराज्य का ध्येय अपनी सभ्यता की विशिष्टता को अक्षुण्ण बनाए रखना है। मैं बहुत-सी नई चीजों को लेना चाहता हूँ, पर उन सबको भारतीयता का जामा पहनाना होगा। मैं पश्चिम से सहर्ष उधार लूँगा, वशर्ते मैं मूल को व्याज सहित लौटा सकूँ।

मेरे सपनों का स्वराज्य गरीबों का स्वराज्य है। आपको भी जीवन की वे सभी आवश्यक चीजें उपलब्ध होनी चाहिए जो राजा-रईसों को उपलब्ध होती हैं। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि आपके पास भी उनके जैसे महल होने चाहिए। वे सुखी जीवन के लिए जरूरी नहीं हैं। आप या मैं उनमें खो जाएंगे। लेकिन आपको जीवन की वे सब साधारण सुख-सुविधाएँ अवश्य मिलनी चाहिए, जो किसी अमीर आदमी को मिलती हैं। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि, जब तक स्वराज्य में आपको इन सुख-सुविधाओं के मिलने की गारण्टी नहीं मिल जाती तब तक वह स्वराज्य अधूरा रहेगा।

“भारत ने पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली है, ऐसा कब कहा जा सकेगा ?”

जब आम जनता यह अनुभव करने लगेगी कि उसे अपनी उन्नति करने की ओर अपने रास्ते पर चलने की आजादी है।

मेरा यह विश्वास है और मैंने अनगिनत बार यह कहा है कि वास्तविक भारत इन थोड़े-से शहरों में नहीं, बल्कि सात लाख गावों में है। मगर हम शहरी लोगों की यही धारणा रही है कि असली भारत शहरों में ही देखने को मिलता है और गाव तो महज हमारी जूरुते पूरी करने के लिए है। हम लोगों ने गायद ही कभी यह सोचने या जानने की कोशिश की है कि गाव के इन गरीब लोगों को पेट भर भोजन और तन ढकने के लिए वस्त्र मिलता है या नहीं।

छल-छद्म से भरे हुए इन शहरों के कारण गावों की जिन्दगी और आजादी हमेशा सकट में रहती है।

यदि शहर वाले यह सिद्ध करना चाहते हैं कि वे भारत के ग्रामवासियों की हित-रक्षा करेंगे तो शहरों के अधिकांश साधनों को गरीबों की स्थिति सुधारने

पर खर्च किया जाना चाहिए ।

ग्रामीणों का शहरो द्वारा शोषण किया जा रहा है और उनका धन शहरो में जा रहा है । मेरी योजना के अन्तर्गत शहरो में उन चीजों को बनाने की इजाजत नहीं दी जाएगी जो गावों में भी उतनी ही अच्छी तरह तैयार की जा सकती है । शहरो का काम है, गावों में बनी वस्तुओं का वितरण । गावों को आत्मनिर्भर बनना होगा । यदि हमें अहिंसा के मार्ग पर चलना है तो मुझे इसके सिवा और कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता ।

शहर अपनी चिन्ता स्वयं कर सकते हैं । हमें गावों की ओर ध्यान देना है । हमें उनकी मूढ़ता, अधविश्वास और सकुचित दृष्टिकोण को दूर करना है, और यह काम हम केवल एक ही तरीके से कर सकते हैं और वह यह है कि हम उनके बीच रहें, उनके मुख-दुःख में शामिल हों और उनमें शिक्षा का प्रसार करें तथा उन्हें वृद्धि और ज्ञान दें ।

हमें ग्रामीणों के माथ, जो कड़कती धूप में कमर झुकाए कड़ी मेहनत करते हैं, अपनापा स्थापित करना चाहिए और यह समझना चाहिए कि हम उस तालाब का पानी कैसे पी सकते हैं जिसमें गाव के लोग नहाते हैं, अपने कपड़े तथा वर्तन धोते हैं और जिसमें उनके द्वार पानी पीते तथा लोटते हैं । तभी, उसके पहले नहीं, हम माधारण जनता का सही प्रतिनिधित्व कर सकेंगे और मुझे पूरा भरोसा है कि वे हमारी हर पुकार को सुनेंगे ।

हमें उन्हें यह मिखाना है कि समय, स्वास्थ्य तथा धन की वचन कैसे की जाए । लायनेल कर्टिस ने हमारे गावों को गोवर के ढेर बताया है । हमें इन गावों को आदर्श गावों में परिणत करना है । हमारे गावों के लोगों को ताजी हवा नहीं मिलती यद्यपि वे ताजी हवा में घिरे हुए होते हैं, उन्हें ताजा खाना नहीं मिलता यद्यपि उनके चारों ओर ताजे से ताजा खाना विद्यमान रहता है । खाने के इस मामले में मैं एक मिशनरी या प्रचारक की तरह बात करता हूँ, क्योंकि मेरा मिशन और ध्येय गावों को सुन्दर बनाना है ।

ग्रामीणों की योजना के पीछे भावना यह है कि हम अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति गावों से करें, और जब हम यह देखें कि कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति गावों द्वारा नहीं हो सकती तब हमें यह पता लगाना चाहिए कि क्या थोड़े-से

यत्न तथा सगठन द्वारा ग्रामीण जन ही लाभकारी ढंग से इन वस्तुओं की पूर्ति नहीं कर सकते । लाभ का अनुमान लगाते समय हमें ग्रामीणों के बारे में सोचना चाहिए न कि अपने बारे में । हो सकता है कि प्रारम्भ में हमें साधारण मूल्य से कुछ अधिक देना पड़े और बदले में कुछ कम अच्छी चीज मिले, पर यदि हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने वालों का खयाल करेंगे और इस बात पर जोर देंगे कि वह अपने काम को बेहतर ढंग से करें और इसके लिए उन्हें मदद देने का भी कष्ट उठाएंगे तो स्थिति अवश्य सुधर जाएगी ।

ग्रामीणों को इतने ऊँचे दर्जों की कुशलता विकसित कर लेनी चाहिए कि उनके द्वारा तैयार चीजें बाहर बाजार में तुरन्त बिक जाए । जब हमारे गाव पूर्ण रूप से विकसित हो जाएंगे तब उनमें ऊँचे दर्जों की कुशलता तथा कलात्मक प्रतिभा वाले लोगों की कमी नहीं रहेगी । उनमें ग्रामीण कवि, ग्रामीण कलाकार, ग्रामीण शिल्पकार, भाषाविद् तथा सशोधक करने वाले होंगे । संक्षेप में, जीवन की कोई भी ऐसी वाछनीय चीज न होगी जो गावों में न पाई जाएगी । आज (भारतीय) गाव गोबर के ढेर हैं । कल वे नन्दन वन के समान हो जाएंगे जिनमें अत्यन्त मेधावी लोग निवास करेंगे, जिन्हें न तो कोई ठग सकता है, और न शोषण कर सकता है ।

ईश्वर ने मनुष्य को इसलिए बनाया कि वह अपने भोजन के लिए परिश्रम करे । ईश्वर ने यह भी कहा कि जो मनुष्य बिना काम किए खाता है वह चोर है । भारत की 80 प्रतिशत जनता साल में छ महीने अनिवार्य रूप से चोर बनी रहती है । यदि भारत (आज) एक विशाल जेल बन गया है तो क्या यह कोई आश्चर्य की बात है ? भूख भारत को चरखे की ओर ले जा रही है । चरखे की पुकार सबसे श्रेष्ठ पुकार है क्योंकि वह प्रेम की पुकार है, और प्रेम स्वराज है । चरखा हमारे देश के करोड़ों मृतप्राय स्त्री-पुरुषों को फिर से जीवन प्रदान करने वाली औषधि के समान है । यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि "मैं चरखा क्यों चलाऊँ जबकि मुझे खाने के लिए काम करने की जरूरत नहीं है ?" (इसका उत्तर यह है) इस लिए कि मैं जो चीज खा रहा हूँ वह मेरी नहीं है । मैं अपने देशवासियों की लूट-खसोट पर जीवन बसर कर रहा हूँ । यदि आप यह पता लगाए कि वह पैसा जो आपकी जेब में जाता है, कहाँ से आता है तो मैं जो कह रहा हूँ उसकी सचाई

का आपको पता चल जाएगा। करोड़ों लोगों के लिए स्वराज कोई माने नहीं रखता, यदि वे यह नहीं जानते कि इस जवर्दस्त की बेकारी में कैसे छुटकारा पाया जाए।

चरखा चलाने के पीछे जो दलील है वह यही है कि श्रम की प्रतिष्ठा को स्वीकार किया जाए।

बहुत-से लोग सोचते हैं कि खादी की वकालत करके मैं स्वराज के जहाज को हवा के रुख के प्रतिकूल ले जा रहा हूँ और इस तरह मैं इसे अवश्य डुबो दूँगा, वे यह भी सोचते हैं कि मैं देश को अन्धकार युग की ओर ले जा रहा हूँ। मैं इस सक्षिप्त लेख में खादी के पक्ष में तर्क नहीं करना चाहता। इसके लिए मैं पहले ही काफी दलील दे चुका हूँ। यहाँ मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि खादी की प्रगति के लिए हर एक कांग्रेसी अथवा हर एक भारतीय क्या कर सकता है। यह (खादी) आर्थिक स्वतन्त्रता तथा देश में सब की समानता के आरम्भ की सूचक है। “हाथ कगन को आरमी क्या?” हर एक स्त्री-पुरुष आजमा कर देख ले और तब उसे स्वयं मेरे कथन की मर्चाई का पता लग जाएगा। खादी को उसके अन्दर निहित सब बातों के साथ लेना चाहिए। इसका मतलब है पूर्णरूपेण स्वदेशी मनोवृत्ति, जीवन की सभी आवश्यकताओं को भारत में प्राप्त करने का निश्चय और वह भी ग्रामीणों के श्रम तथा बुद्धि द्वारा। इसका मतलब है वर्तमान प्रणाली को उलट देना, अर्थात् वजाय इसके कि भारत के आधे दर्जन शहर और ग्रेट ब्रिटेन भारत के मात लाख गावों के शोषण तथा बरखादी पर जीवन बमर करे, भारतीय गाव आत्मनिर्भर हो जाएँ और वे स्वेच्छा से भारतीय शहरों तथा अन्य देशों की भी सेवा करेंगे जिसमें दोनों पक्षों को लाभ होगा।

इसके लिए बहुत-से लोगों की मनोवृत्ति तथा पसन्द में क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है। अहिंसा का तरीका यद्यपि बहुत-सी बातों में आसान है पर कुछ हमारे अर्थ में बहुत कठिन भी है। वह प्रत्येक भारतीय के जीवन को अत्यन्त गहराई में स्पष्ट करता है, इससे उसमें एक ऐसी शक्ति आ जाती है जो उसमें अब तक छिपी पड़ी थी और इसमें उसे भारतीय मानवता के साथ एकाकार हो जाने का गौरव प्राप्त होता है। यह अहिंसा, अकर्मण्यता नहीं है जैसा कि हम गलती से इसे बहुत दिनों तक समझते आए हैं, वरन् अब तक मनुष्य की ज्ञात शक्तियों में से सबसे अधिक बलवती है और इसी पर इसका अस्तित्व निर्भर

है। यही वह शक्ति है जिसे मैंने कांग्रेस को तथा उसकां जरिए विश्व को देने की कोशिश की है। मेरे लिए खादी भारतीय जनता की एकता का, इसकी आर्थिक स्वतन्त्रता तथा समानता का प्रतीक है, और इस तरह वह अन्ततोगत्वा जवाहरलाल नेहरू की काव्यमय भाषा में “भारत की स्वतन्त्रता का दाना” है।

परन्तु खादी की मनोवृत्ति का मतलब है जीवन की आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन तथा वितरण का विकेंद्रीकरण। इसका सूत्र यह है कि हर गांव अपनी समस्त आवश्यक चीजों को स्वयं पैदा करे तथा स्वयं ही उनकी खपत करे और इसके अतिरिक्त कुछ उत्पादन वह शहरों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दे।

भारी उद्योगों का अवश्य ही केंद्रीकरण तथा राष्ट्रीयकरण किया जाएगा। लेकिन गांवों में चलने वाले विशाल राष्ट्रीय उद्योग में उनका अंश सबसे कम होगा।

मैं आपको पहले भी यह स्मरण दिला चुका हूँ कि यदि आपके अन्दर स्वदेशी की भावना है तो आप अपनी बड़ी-बड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पश्चिम की ओर नहीं देखेंगे। इस समय जबकि भारत में चीजों का बड़ा भारी अभाव है, यदि भारत बाहर से खाने की चीजें तथा कपड़ा मगाता है तो इसमें मुझे आपत्ति न होगी बशर्ते यह साबित हो जाए कि भारत अपने पास से इन दोनों चीजों की पूर्ति करने में पूर्णतः असमर्थ है। यह बात किसी भी तरह साबित नहीं होती। मैं यह कहने में कभी नहीं हिचका हूँ और मैं फिर यह कहूँगा कि भारत पूर्णरूप से इस योग्य है कि वह अपने हजारों लाखों गांवों में अपनी खादी तथा अपनी खाद्य सामग्री पैदा कर सकता है। लेकिन बड़े दुख की बात है कि यहाँ के लोग इतने आलसी हो गए हैं कि वे अपनी तरफ देखते ही नहीं और इस बात पर जोर ही नहीं देते कि इन दोनों चीजों की पूर्ति देश के अन्दर से ही की जाए। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि मैं इन दोनों चीजों की पूर्ति के लिए पश्चिम की ओर देखने की बजाय भूखा और नगा रहना ज्यादा पसन्द करूँगा। बिना दृढ़ निश्चय के सही काम करना सम्भव नहीं होता।

हम सत्य तथा अहिंसा को केवल ग्रामीण जीवन की सादगी में ही प्राप्त कर सकते हैं। यदि आज ससार गलत रास्ते पर जा रहा है तो मुझे इससे भयभीत

नहीं होना चाहिए। हो सकता है कि भारत भी उमी मार्ग पर जाए और उम पतंगे की तरह अन्त में अपना विनाश कर डाले जो ली के चारों ओर तेजी से घूम-घूम कर उसी में जल मरता है। परन्तु जीवन की अन्तिम मास तक मेरा यह परम कर्त्तव्य है कि मैं भारत को तथा उसके जरिए पूरे विश्व को इस विनाश से बचाने का प्रयत्न करता रहूँ।

ग्राम स्वराज की मेरी कल्पना यह है कि ग्राम एक ऐसा पूर्ण गणतन्त्र हो, जो अपनी मुख्य जरूरतों के लिए अपने पड़ोसियों पर भी निर्भर न हो, और फिर भी दूसरी बहुतेरी जरूरतों के लिए एक-दूसरे पर निर्भर हो, जिनमें दूसरों पर निर्भरता जरूरी है। इस तरह हर एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत का तमाम अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास अपने पशुओं के लिए चरागाह और गांव के वयस्क व्यक्तियों व बच्चों के लिए मन बहलाव और खेल-कूद के मैदान होने चाहिए। इसके बाद यदि जमीन और हो तो उसमें वह उपयोगी व्यावसायिक फसलें बोएगा, लेकिन उनमें गाजा, तम्बाकू, अफीम आदि की खेती नहीं होनी चाहिए। हर एक गांव में गांव का अपना एक नाटकघर, एक पाठशाला और एक सभा भवन होगा। पानी के लिए उसका अपना इन्तजाम होगा—पानी कल होंगे—जिससे गांव के सभी लोगों को पीने का शुद्ध पानी मिलेगा। कुओं और तालाबों पर गांव का पूरा नियन्त्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दर्जे तक शिक्षा सबके लिए लाजमी होगी। जहां तक सम्भव हो सकेगा, गांव के मारे काम सहकारिता के आधार पर किए जाएंगे। आजकल जैसी जात-पात दिखाई देती है वैसी जात-पात या किसी प्रकार की छुआछूत उसमें नहीं होगी। अहिंसा के आधार पर, जिसके मत्याग्रह और महयोग, ये दो शस्त्र हैं, ग्रामीण समाज का शासन चलेगा। गांव की रक्षा के लिए ग्रामीण रक्षक होंगे जिन्हें लाजमी तौर पर गांव की चौकीदारी का काम करना होगा। इसके लिए गांव के रजिस्टर से वारी-वारी में लोगों का चुनाव किया जाएगा। गांव का शासन चलाने के लिए हर साल गांव के पांच आर्दमियों की एक पंचायत चुनी जाएगी। निर्धारित योग्यता वाले ग्रामीण बालिग स्त्री-पुरुषों को इस पंचायत को चुनने का अधिकार होगा। इन पंचायतों को सब प्रकार की आवश्यक सत्ता और अधिकार

होगे। चूँकि इस ग्राम स्वराज में आज के प्रचलित अर्थ में सजा देने की कोई प्रणाली नहीं होगी, इसलिए यह पचायत अपने एक साल के कार्यकाल में धारा-सभा, न्यायसभा और कार्यपालिका का काम संयुक्त रूप से करेगी। यहाँ मैंने इस बात पर विचार नहीं किया है कि इस तरह के गाव का अपने पाम-पडोस के गावों के साथ या केन्द्रीय सरकार के साथ, अगर वैसी कोई सरकार हुई, तो क्या सम्बन्ध होगा। मेरा उद्देश्य तो ग्राम सरकार की एक रूपरेखा पेश करना है। इसमें व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर आधारित पूर्ण लोकतन्त्र होगा। व्यक्ति ही अपनी सरकार का निर्माता है। अहिंसा का कानून उसका और उसकी सरकार का संचालन करता है। वह और उसका जीव सारी दुनिया की शक्ति का मुकाबला कर सकता है क्योंकि हर एक ग्रामीण के जीवन का सबसे बड़ा नियम यह होगा कि वह अपनी और अपने गाव की इज्जत बचाने के लिए मर मिटे।

अनगिनत गावों से बना यह सगठन एक के ऊपर एक चढ़ते हुए खण्डों में नहीं, बल्कि एक के बाद एक बढ़ते हुए घेरो के रूप में होगा। जिन्दगी पिरामिड की शकल में नहीं होगी, जहाँ ऊपर का शिखर नीचे की नींव पर टिका होता है। वह तो समुद्र में उठने वाले भवर की तरह होगी, जिसका केन्द्रबिन्दु व्यक्ति होगा। यह व्यक्ति हमेशा अपने गाव की खातिर मर-मिटने को और एक गाव दूसरे गावों के लिए मर-मिटने को तैयार होगा और इस तरह अन्त में सारा समाज ऐसे लोगों का बन जाएगा, जो उद्धत और अहकारी न होकर विनम्र होंगे और समुद्र की तरह गम्भीर होंगे। इसलिए सबसे बाहर की परिधि अपनी ताकत का उपयोग भीतरी वृत्त को कुचलने में नहीं करेगी, बल्कि उस सबको ताकत देगी जो उसके अन्दर है और यह उसी से अपनी शक्ति प्राप्त करेगी। इसमें न तो कोई पहला होगा, न आखिरी और इसमें हर एक स्त्री-पुरुष को यह मालूम होगा कि वह क्या चाहता है और इससे भी बड़ी बात यह कि उसे यह भी ज्ञात होगा कि किसी भी व्यक्ति को किसी ऐसी चीज की कामना नहीं करनी चाहिए जिसे दूसरे लोग समान मेहनत करके नहीं प्राप्त कर सकते।

भारतीय ग्रामीण बाहरी मोटे-भोटेपन के पीछे बहुत पुरानी सभ्यता छिपी हुई है। उसके बाह्य गवारूपन के पीछे आपको आध्यात्मिकता का अगाध भण्डार मिलेगा। पश्चिम में आपको ऐसी चीज नहीं मिलेगी। उसकी बाहरी

परत को हटा दीजिए और उसकी गरीबी तथा निरक्षरता को दूर कर दीजिए तो उसका सर्वोत्तम रूप, स्वतन्त्र तथा सभ्य संस्कृत नागरिक रूप सामने आएगा ।

(घ) लोकतन्त्र

सर्वोच्च प्रकार की स्वतन्त्रता में सर्वाधिक अनुशासन तथा नम्रता भी निहित होती है । जो स्वतन्त्रता अनुशासन तथा विनय से प्राप्ति होती है उसे कोई छीन नहीं सकता । उच्छृंखल स्वतन्त्रता अशिष्टता की निशानी है जिसमें व्यक्ति की अपनी तथा पड़ोसियों की भी हानि होती है ।

जन्मजात लोकतन्त्रवादी जन्म से ही अनुशासन का पालन करनेवाला होता है । जो व्यक्ति सभी मानवीय अथवा ईश्वरीय नियमों का स्वेच्छापूर्वक पालन करने का आदी होता है वह स्वभाव से लोकतन्त्रवादी होता है । मैं स्वभाव तथा प्रशिक्षण दोनों से लोकतन्त्रवादी होने का दावा करता हूँ । जो लोग लोकतन्त्र की सेवा करने के इच्छुक हैं, उन्हें पहले लोकतन्त्र की डमकसौटी पर खरा उतरना चाहिए । इसके अलावा, लोकतन्त्रवादी को पूर्णरूप से निःस्वार्थ होना चाहिए । उसे चाहिए कि वह जो कुछ भी सोचे-विचारे वह अपने को अथवा अपने दिल को दृष्टि में रखकर नहीं, बल्कि एकमात्र लोकतन्त्र को दृष्टि में रखकर । तभी उसे मविनय अवज्ञा का अधिकार प्राप्त होता है । मैं यह नहीं चाहता कि कोई व्यक्ति अपने विश्वासों को छोड़ दे या अपनी भावनाओं का दमन करे । मैं यह नहीं मानता कि स्वस्य तथा मच्चे मतभेद से हमारे ध्येय को हानि पहुँचेगी । परन्तु अवसरवादिता, छल-छिद्र अथवा कृत्रिम समझौते द्वारा अवश्य हानि पहुँचेगी । यदि आप किसी बात से असहमत हैं तो आपको डम बात का ध्यान रखना चाहिए कि आपके विचार आपके अन्तर्तम विश्वासों को व्यक्त करें न कि आपके दिल के सुविधाजनक नारे को ।

मैं व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की कद्र करता हूँ, लेकिन आपको यह हरगिज नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य मूलतः एक सामाजिक प्राणी है । अपनी वैयक्तिकता को सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओं के अनुकूल ढालना सीखकर ही वह अपनी वर्तमान स्थिति तक पहुँचा है । अनियन्त्रित व्यक्तिवाद मात्स्य न्याय है । हमने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य तथा सामाजिक नियन्त्रण के बीच सामंजस्य स्थापित करना

सीख लिया है। समूचे समाज की भलाई की दृष्टि से सामाजिक नियन्त्रण को स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करने से व्यक्ति तथा समाज, जिसका वह सदस्य है, दोनों का कल्याण होता है।

मनुष्य की वनाई हुई कोई भी सस्था ऐसी नहीं है, जिसमें खतरे या दोष न हो। सस्था जितनी ही बड़ी होती है उसके दुरुपयोग की उतनी ही अधिक सम्भावना होती है। लोकतन्त्र महान सस्था है, अतः उसका दुरुपयोग भी बहुत हो सकता है। इसका इलाज लोकतन्त्र से वचना नहीं बल्कि उसके दुरुपयोग की सम्भावना को कम से कम करना है।

✓ लोकतन्त्र वह कला और विज्ञान है जिसके जरिए समाज के सभी विभिन्न वर्गों के लोगो के समस्त भौतिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक साधनो को सबकी भलाई के लिए लगाया जाता है। ✓

✓ मुझे राजनीति में इस कारण विवश आना पड़ा, कि मैंने यह अनुभव किया कि बिना राजनीति में आए मैं सामाजिक कार्य भी नहीं कर सकता। मेरा खयाल है कि राजनीतिक काम को सामाजिक तथा नैतिक प्रगति के रूप में समझना चाहिए। लोकतन्त्र में जीवन का कोई भी अंग राजनीति से अछूता नहीं रहता। 2✓

सच्चा लोकतन्त्र अथवा जनता का स्वराज मिथ्या तथा हिंसक तरीको से कभी स्थापित नहीं किया जा सकता। इसका सीधा-सादा कारण यह है कि इन तरीको का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि विरोधियो को दवाकर अथवा उनका नाश करके सारे विरोध को समाप्त कर दिया जाएगा। इससे व्यक्ति स्वातन्त्र्य को बल नहीं मिलता। व्यक्ति स्वातन्त्र्य विशुद्ध अहिंसा के राज्य में ही पनप सकता है।

✓ लोकतन्त्र के सम्बन्ध में मेरी धारणा यह है कि उसमें कमजोर से कमजोर तथा बलवान से बलवान व्यक्ति को समान अवसर मिलना चाहिए। अहिंसा के सिवा और किसी तरीके से ऐसा नहीं हो सकता। आज विश्व में कोई भी देश ऐसा नहीं है जो गरीबो की हित-रक्षा करना अपना कर्तव्य समझता हो, उनके लिए जो कुछ भी किया जाता है, वह मेहरबानी के तौर पर। ✓

✓ सत्ता में जब तक सब लोगो का हिस्सा नहीं होता तब तक लोकतन्त्र की स्थापना एक असम्भव बात है। लेकिन लोकतन्त्र को पतित होकर भीड़तन्त्र में परिणाम नहीं होने देना चाहिए। एक अन्त्यज तथा एक श्रमिक का भी, जो आपको

अपनी रोजी कमाने में मदद देता है, स्वराज में हिम्मा होगा। परन्तु आपको उनके सम्पर्क में आना होगा, उनके पास जाना होगा, उनके झोपड़ों को देखना होगा जिनमें वे जानवरों की तरह रहते हैं। मानवता के इस अंग की देखभाल करना आपका कर्त्तव्य है। उनके जीवन को बनाना या बिगाड़ना आपके हाथों में है।

हमें इन गरीब लोगों को, जिनका दिल मोने का है, जो देश के दुख-सुख को अपना समझते हैं, जो कुछ सीखना चाहते हैं तथा नेतृत्व चाहते हैं, सिखाना होगा। आवश्यकता सिर्फ शीटे-में समझदार तथा ईमानदार कार्यकर्ताओं की है। अगर ऐसे कार्यकर्ता मिल जाए तो पूरे राष्ट्र को इस तरह संगठित किया जा सकता है कि वह समझदारी में काम करे, और भीड़तन्त्र में लोकतन्त्र को विकसित किया जा सकता है।

यदि हम लोकतन्त्र की सच्ची भावना को विकसित करना चाहते हैं तो हम अमहिष्णु नहीं हो सकते। व्यक्ति की अमहिष्णुता इस बात की परिचायक है कि उसे अपने ध्येय में विश्वास नहीं है।

यदि हम विपक्ष की बात सुनने को तैयार नहीं हैं तो लोकतन्त्र का विकास सम्भव नहीं है। जब हम अपने विरोधियों की बात सुनने में इनकार कर देते हैं अथवा उसे सुनने के बाद उनका मजाक उड़ाते हैं, तब हम अपने विवेक के द्वार बन्द कर देते हैं। जब अमहिष्णुता हमारी आदत बन जाती है तब सत्य को गवा देने का खतरा उत्पन्न हो जाता है। प्रकृति ने हमें जितनी समझ दी है और जहां तक हम अपना भाग देख सकते हैं वहां तक हमें निडर होकर काम करना चाहिए। हमें अपना दिमाग खुला रखना चाहिए, और इस बात को मानने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए कि हम जिस बात को सत्य समझ बैठे थे वह आखिरी सत्य नहीं। इस तरह दुर्गग्रह छोड़ने से हमारे अन्दर व्याप्त सत्य पुष्ट होता है और यदि उसमें कोई खोटा भी हुआ तो वह भी नष्ट हो जाता है।

मैंने बार-बार यह बात कही है कि किसी भी विचारधारा के लोग यह दावा नहीं कर सकते कि उनके विचार बिल्कुल सही हैं। हम सब लोग गलती कर सकते हैं, और हमें अक्सर अपने निर्णय बदलने पड़ जाते हैं। भारत जैसे इस विशाल देश में सभी सही विचारधाराओं के लिए स्थान होना चाहिए। अतः हमारा अपने प्रति तथा दूसरों के प्रति कम से कम इतना कर्त्तव्य अवश्य है कि हम अपने विरोधियों के दृष्टिकोण को समझने की कोशिश करें और यदि हम उसे

स्वीकार नहीं कर सकते तो उसका उतना ही आदर करें जितना हम उनसे अपने दृष्टिकोण के आदर की उम्मीद रखते हैं।

(सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे हुए बीस आदमी नहीं चला सकते। वह तो नीचे से हर एक गाव के लोगो द्वारा चलाई जानी चाहिए।)

कोई भी सरकार पूरी तरह से अहिंसक बनने में सफल नहीं हो सकती क्योंकि वह सभी लोगो का प्रतिनिधित्व करती है। मैं इस तरह के स्वर्ण युग की आज कल्पना नहीं करता। लेकिन मैं एक अहिंसाप्रधान समाज की सम्भावना में अवश्य विश्वास करता हूँ और उसके लिए प्रयत्नशील भी हूँ।

अधिकतर लोग सरकार के पेचीदे तन्त्र को नहीं समझते। वे यह नहीं समझते कि हर एक नागरिक, अपने समय की सरकार को कायम रखने में अनेक तरीको से, जिनकी उसे जानकारी भी नहीं होती, मूक रूप से लेकिन निश्चय ही योगदान देता है। अतः प्रत्येक नागरिक अपनी सरकार के प्रत्येक काम के लिए उत्तरदायी होता है। और जब तक सरकार के काम महनीय हों तब तक उसका समर्थन करना विल्कुल उचित है। पर जब उसके कामों से उसे (नागरिक को) तथा उसके राष्ट्र को नुकसान पहुचने लगे तब उसका यह कर्तव्य है कि वह उसका समर्थन करना बन्द कर दे।


राज्य के अधिकारों में वृद्धि होते देखकर मैं अत्यन्त सशक्त हो उठता हूँ, क्योंकि बाहर से तो ऐसा लगता है कि वह गोपण को घटा कर समाज का भला कर रहा है, पर वास्तव में वह व्यक्ति को, जो मंद तरह की प्रगति की जड़ है, दबा करके मानव जाति का सबसे अधिक नुकसान करता है।

मेरे लिए व्यक्ति के प्रति, चाहे वह नीचे से नीचा हो, न्याय ही सब कुछ है। अन्य सब चीजें बाद में आती हैं।

यदि व्यक्ति का कोई महत्व ही नहीं रह जाता तो समाज में वच ही क्या रहता है? व्यक्ति-स्वातन्त्र्य ही एक ऐसी चीज है—जो मनुष्य को समाज की सेवा के लिए अपने को अर्पित करने की प्रेरणा दे सकती है। यदि उससे यह स्वातन्त्र्य छीन लिया जाता है, तो वह यन्त्रमात्र बनकर रह जाता है और समाज नष्ट हो जाता है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को समाप्त करके किसी भी समाज का निर्माण सम्भव नहीं है।


जनता के स्वराज का अर्थ है व्यक्तियों का स्वराज (स्वशासन)। और

इस तरह का स्वराज तभी प्राप्त होता है जब सभी व्यक्ति नागरिक होने के नाते अपने कर्त्तव्य का पालन करें। इसमें कोई भी व्यक्ति अपने अधिकारों को नहीं मोचता। अधिकार तो जब जरूरत होती है, प्राप्त हो जाते हैं, जिसमें व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का और अच्छी तरह पालन कर सके।

✓ जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का अच्छी तरह पालन करता है उसे अधिकार आपसे आप प्राप्त हो जाते हैं। वस्तुतः अपना कर्त्तव्य पालने का अधिकार ही एकमात्र ऐसा अधिकार है जिसके लिए जीवित रहा जा सकता है और जिसके लिए प्राण भी दिए जा सकते हैं। इसके जन्तुगत सभी न्यायोचित अधिकार आ जाते हैं। इसके अलावा और सब अधिकार किसी न किसी रूप में अपहर्ण मात्र हैं और उनमें हिंसा के बीज विद्यमान होते हैं। 

अधिकारों का सच्चा स्रोत कर्त्तव्य है। यदि हम सब लोग अपना-अपना कर्त्तव्य करें तो अधिकार आमानी से मिल जाते हैं। यदि हम अपने कर्त्तव्य को किए बिना अधिकारों के पीछे दौड़ेंगे तो मृग-मरीचिका की तरह वे हमसे दूर होते जाएंगे। हम जितना ही उनका पीछा करेंगे उतना ही वे हमसे दूर होते जाएंगे। यह शिक्षा श्रीकृष्ण के इन अमर शब्दों में दी गई है “कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन।” कर्त्तव्य कर्म है, अधिकार फल है।

जबकि ऊपर से लादी गई सत्ता को पुलिस तथा सेना की हमेशा जख्मन रहती है, अन्दर में उत्पन्न शक्ति को इनकी विल्कुल जरूरत नहीं होनी चाहिए।

✓ सत्ता दो प्रकार की होती है—एक दण्ड के भय में प्राप्त की जाती है और दूसरी प्रेमपूर्ण कार्यों द्वारा। प्रेम पर आघातित सत्ता दण्ड भय द्वारा प्राप्त सत्ता की अपेक्षा हजार गुना अधिक प्रभावकारी तथा स्थायी होती है। 

पिता का अपने बच्चों पर अधिकार होता है। वह उन्हें सजा भी दे सकता है, लेकिन हिंसा करके नहीं। शक्ति का उपयोग सबसे ज्यादा प्रभावकारी तब होता है जब वह सबसे कम कष्टप्रद होता है। शक्ति का यदि मही ढग से उपयोग किया जाए तो वह लोगों को भार की तरह नहीं बरन् फूल की तरह लगेगी।

मैं ‘अधिकतम लोगों की अधिकतम भलाई’ के सिद्धान्त में विश्वास नहीं करता। इसका अर्थ यही हुआ कि 51 प्रतिशत लोगों की कल्पित भलाई के लिए 49 प्रतिशत लोगों के हित का बलिदान किया जा सकता है अथवा किया जाना चाहिए। यह एक निमग्न सिद्धान्त है और इससे मानवता को नुकसान

पहुँचा है। 'सबकी अधिकतम भलाई' का सिद्धान्त ही एकमात्र सच्चा तथा उच्च मानवीय सिद्धान्त है और इसे सर्वाधिक आत्मत्याग द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

लोकतन्त्र के इस युग में यह आवश्यक है कि लक्ष्यो की पूर्ति जनता के सामूहिक प्रयास द्वारा की जाए। इसमें सन्देह नहीं कि एक अत्यधिक शक्तिशाली व्यक्ति के प्रयास द्वारा भी ध्येय की पूर्ति अच्छी बात है, लेकिन इससे जनसमुदाय को अपनी सामूहिक शक्ति का भान कभी नहीं हो सकता। एक व्यक्ति की सफलता एक करोड़पति द्वारा लाखों-करोड़ों भूखों को मुक्त खाना वाटने जैसी होगी। इसलिए हम लोगों को अपनी शक्तियों को रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने में लगाना चाहिए।

जिस काम को लाखों-करोड़ों लोग मिलकर कर सकते हैं उस काम में एक अद्भुत शक्ति आ जाती है।

दामो के बढ़ने का भूत मुझे भयभीत नहीं करता। यदि हमारे बीच बहुत-से आदमखोर राक्षस हैं और यदि हमें उनका मुकाबला करना नहीं आता तो हम इसी लायक हैं कि वे हमें निगल जाए। तभी हमें पता चलेगा कि सकट के समय हमें किस तरह व्यवहार करना चाहिए। लोगों को सच्चे लोकतन्त्र की शिक्षा न तो किताबों से मिलती है और न सरकार से, जो नाम से तथा दरअसल उनकी सेवक है। लोकतन्त्र की सबसे अच्छी शिक्षा कठोर अनुभव द्वारा ही मिलती है।

लोकतन्त्र में दम्बूपन के लिए कोई स्थान नहीं है। जब लोग आमतौर से किसी चीज में विश्वास करते हैं और उनकी मांग करते हैं तब उनके प्रतिनिधियों के सामने इसके सिवाय और कोई चारा नहीं रह जाता कि वे उनकी मांग को पूरा करें। देखा गया है कि जनमूह के सकल्प तथा पौरुष अपनाने पर लड़ाई जीतने में बहुत मदद मिली है।

यदि हम यह सोचने लगे कि अब तो स्वराज मिल गया और अब हम निश्चित होकर बैठ सकते हैं, तो हम देश का सबसे बड़ा नुकसान करेंगे। अब तक लोगों की सारी शक्ति ब्रिटिश सरकार से लड़ने में लगी थी। अब उसी शक्ति को राष्ट्र को सुखी तथा बलवान बनाने में लगाना चाहिए, अन्यथा वह उलटकर हमारे ही ऊपर पड़ेगी और हमारे अन्दर फूट तथा विघटन पैदा करेगी।

यदि आम जनता स्वतन्त्रता का भोग करना चाहती है तो उसे सबसे पहले

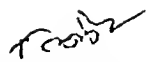
स्वेच्छा से अनुशासन पालन करने का आत्मसमय का मन्त्र सीखना होगा। अन्यथा जो भी सरकार होगी उसे जबरदस्ती अनुशासन का पालन कराना होगा। ऐसी स्वतन्त्रता स्वतन्त्रता ही नहीं बल्कि परतन्त्रता होगी। हर देश में लोगो को वैसी ही सरकार मिलती है जिसके वे पात्र होते हैं। यदि हुल्लडवाजी करेंगे तो सरकार तथा उसके अधिकारी भी कानून और व्यवस्था के नाम पर वैसा ही करेंगे। इसका नतीजा आजादी या स्वतन्त्रता नहीं बल्कि अराजक शक्तियों की कशमकश होगा जिसमें दोनों एक-दूसरे को दवाने की कोशिश करेंगे। सामूहिक स्वतन्त्रता की पहली आवश्यकता है आत्म-अनुशासन। यदि लोगो का व्यवहार शिष्ट होगा तो सरकारी अधिकारी उनके सच्चे सेवक बन जाएंगे, अन्यथा वे उनकी गर्दन पर चढ़ बैठेंगे जो बिल्कुल अनुचित भी न होगा।

यदि नेता तथा कार्यकर्ता समय की पाबन्दी सख्ती से करें तो इससे राष्ट्र का विशेष लाभ होगा। किसी भी व्यक्ति से जितना काम वह सचमुच कर सकता है, उससे ज्यादा की अपेक्षा नहीं की जाती। यदि दिन के अन्त में कुछ काम बच रहता है अथवा यदि कोई कार्यकर्ता अपना एक समय का भोजन छोड़े बिना या अपने सोने अथवा मनोरंजन के समय में कटौती किए बिना अपना काम पूरा नहीं कर पाता तो इसका मतलब है कि कहीं न कहीं अव्यवस्था है। मुझे इसमें सन्देह नहीं कि यदि हम अपना काम समय से करने की आदत डाल लें और (निर्धारित) कार्यक्रम के अनुसार काम करें तो राष्ट्रीय क्षमता अवश्य बढ़ेगी तथा हम अपने लक्ष्य की ओर तेजी से बढ़ेंगे और कार्यकर्ता लोग अधिक स्वस्थ तथा दीर्घजीवी होंगे।

हमारा नैतिक स्तर इतनी तेजी से गिर रहा है कि अब मैं अनुभव करता हूँ कि हमारी सत्याग्रह की लड़ाइयों में सच्ची भावना की कमी क्यों थी और वे निर्बलों का सत्याग्रह मात्र बन कर क्यों रह गई थी।

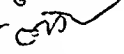
इसीलिए मैंने कहा है कि जो व्यक्ति सब परिस्थितियों में नेक बना रहना चाहता है तथा नेकी करते रहना चाहता है उसे कभी सत्ता नहीं ग्रहण करनी चाहिए।

सार्वजनिक धन भारत की गरीब जनता का धन है जिसमें ज्यादा गरीब इस पृथ्वी पर और कोई नहीं है। (इसलिए) हमें और ज्यादा सजग, सतर्क तथा सावधान रहना चाहिए और हमें जनता से मिलनेवाली हर पाई का हिसाब

देने के लिए (हमेशा) तैयार रहना चाहिए 

किसी भी सगठन के लिए अपना हिसाब-किताब सही रखना अनिवार्य आवश्यकता है। हिसाब-किताब ठीक से रखे बिना सत्य का विशुद्ध रूप में पालन असम्भव है।

यदि हम एक-एक पाई का, जो हमें मिलती है, हिसाब नहीं रखते और उस का समुचित ढंग से उपयोग नहीं करते तो हमें सार्वजनिक जीवन से निकाल दिया जाना चाहिए।

समस्त सार्वजनिक संस्थाओं का बैंक जनता ही होनी चाहिए और उसकी मर्जी के खिलाफ, उन्हें एक दिन भी कायम नहीं रहना चाहिए। जो संस्था सचित पूँजी के व्याज पर चलती है, वह जनमत के आगे नहीं झुकती और निरकुश हो जाती है तथा अपने हर काम को सही समझने लगती है 

अनेक सार्वजनिक संस्थाओं का मुझे जो अनुभव हुआ है उससे मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि सार्वजनिक संस्थाओं को स्थायी कोषों द्वारा चलाना अच्छा नहीं होता। स्थायी कोष में संस्था के नैतिक पतन का बीज रहता है। सार्वजनिक संस्था का मतलब है ऐसी संस्था जो जनता की स्वीकृति तथा जनता के पैसे द्वारा चलाई जाए। संस्था को जब जनता का समर्थन मिलना बन्द हो जाता है, तब उसे बने रहने का अधिकार नहीं रह जाता। जिन संस्थाओं का संचालन स्थायी कोषों द्वारा होता है वे अक्सर जनमत की उपेक्षा करती और जनमत के खिलाफ काम करती हैं। इसका अनुभव हमें अपने देश में हर कदम पर होता है। कुछ तथाकथित धार्मिक न्यासों ने हिसाब-किताब रखना ही बन्द कर दिया है। न्यासी मालिक बन बैठे हैं और वे किसी के प्रति जवाबदार नहीं हैं। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि सार्वजनिक संस्थाओं का अस्तित्व प्रकृति की भाँति उनके प्रतिदिन के काम पर निर्भर होना चाहिए। जिस संस्था को सार्वजनिक समर्थन प्राप्त न हो उसे कायम रहने का कोई अधिकार नहीं है।

(ड) अस्पृश्यता

यह बड़े दुःख की बात है कि आज हमारे लिए धर्म का मतलब खान-पान पर रोक-टोक तथा ऊँच-नीच के भेद के सिवा और कुछ नहीं रह गया है। मैं आपको बता दूँ कि इससे बढ़कर और कोई मूर्खता नहीं हो सकती। जन्म से और बाहरी

नेम-धरम से कोई बड़ा-छोटा नहीं होता । एकमात्र चरित्र ही इसकी कसौटी है । ईश्वर ने मनुष्य को बड़ा या छोटा नहीं बनाया । कोई भी धर्मग्रन्थ जो किसी मनुष्य को उसके जन्म के कारण हीन अथवा अछूत करार देता है, हमारी श्रद्धा का पात्र नहीं हो सकता, यह भगवान को तथा मृत्यु को, जो ईश्वर है, मानने से इनकार करना है ।

आज हिन्दू धर्म में एक अमिट कलक लगा हुआ है । मैंने यह मानने से इनकार कर दिया है कि यह अनादि काल से चला आ रहा है । मेरा खयाल है कि 'अस्पृश्यता' की यह दुखद, घृणित तथा दासतापूर्ण भावना हमारे अन्दर उम समय आई जब हम सबसे ज्यादा पतित हो गए थे । इस बुराई ने हमारे अन्दर घर कर लिया है और अभी भी वह हमारे अन्दर मौजूद है ।

आज हिन्दू धर्म में जिस तरह अस्पृश्यता बरती जाती है, वह मेरे विचार से ईश्वर तथा मनुष्य के प्रति पाप है और इसलिए वह विपरीत नामूर के समान धीरे-धीरे हिन्दू धर्म के मर्मस्थल को खा रही है । मेरे विचार से यदि पूरे हिन्दू शास्त्र को लिया जाए तो उसमें इसको (अस्पृश्यता को) कहीं भी मान्यता प्राप्त नहीं है । इससे सवर्ण तथा अछूत दोनों का पतन हुआ है । इसने लगभग चार करोड़ आदमियों के विकास को कुठित कर दिया है । उन्हें जीवन की साधारण सुख-सुविधाओं से वंचित कर दिया है । अतः यह जितनी जल्दी समाप्त हो जाए उतना ही यह हिन्दू धर्म के लिए, भारत के लिए तथा सम्पूर्ण मानव जाति के लिए अच्छा होगा ।

मेरी दृष्टि में अस्पृश्यता हिन्दू धर्म के लिए जीवन-मरण का सवाल है । जैसा कि मैंने बारम्बार कहा है, यदि अस्पृश्यता बनी रहती है तो न केवल हिन्दू धर्म बल्कि पूरा भारत नष्ट हो जाएगा । यदि हिन्दुओं के हृदय से अस्पृश्यता की भावना जड़-मूल से निकाल दी जाती है, तो हिन्दू धर्म विश्व को एक निश्चित सन्देश दे सकता है । पहली बात मैंने सैकड़ों सभाओं में कही है, लेकिन दूसरी बात नहीं कही है । वह एक ऐसे व्यक्ति का कथन है जो सत्य को ईश्वर के रूप में मानता है । अतः उसमें कोई अतिरजना नहीं है । यदि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का अभिन्न अंग है तो हिन्दू धर्म मृतप्राय है । लेकिन अस्पृश्यता एक घृणित असत्य है । अस्पृश्यता के विरुद्ध आन्दोलन चलाने के पीछे मेरा उद्देश्य स्पष्ट है ।

मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि प्रत्येक हिन्दू अछूतो को केवल छूने लग जाए बल्कि यह कि हर एक स्पृश्य हिन्दू अस्पृश्यता को अपने हृदय से निकाल दे और पूर्णरूप से उसका हृदय-परिवर्तन हो जाए ।

स्वार्थ की भावना से प्रेरित होकर अपने को बड़ा तथा दूसरो को छोटा समझना बहुत बुरी बात है । लेकिन जब हम अस्पृश्यता-जैसी बुराई को धर्म के साथ नत्थी कर देते हैं तो वह और भी बुरी बात, बल्कि दुगुनी गलती हो जाती है । अतः जब विद्वान पंडित लोग अस्पृश्यता जैसी स्पष्ट बुराई के औचित्य को सिद्ध करने के लिए शास्त्रो की दुहाई देते हैं तो मुझे बड़ा दुख होता है । मैंने यह बात पहले भी कही है और आज फिर कह रहा हूँ कि हम हिन्दू लोग अग्निपरीक्षा से गुजर रहे हैं । हम चाहे या न चाहे, अस्पृश्यता तो मिट रही है । लेकिन अगर इस परीक्षा की घड़ी में हम इस पाप पर पश्चाताप करे, अपने को सुधारे तथा शुद्ध बनाए तो इतिहास में इस कार्य का उल्लेख हिन्दुओं के एक सर्वश्रेष्ठ पवित्र कार्य के रूप में किया जाएगा । यदि समय की गति के कारण हम अपनी इच्छा के विरुद्ध काम करने को विवश होना पड़ना है और हरिजन अपने अधिकार स्वयं प्राप्त कर लेते हैं तो यह न तो हिन्दुओं के लिए श्रेयस्कर होगा और न हिन्दू धर्म के लिए । मैं एक कदम और आगे बढ़कर यह कहता हूँ कि यदि हम इस परीक्षा में असफल हो गए तो हिन्दू धर्म तथा हिन्दू जाति समाप्त हो जाएगी ।

हरिजन का अर्थ है 'हरि का जन' । ससार के सभी धर्म ईश्वर को अनाथ का सखा, असहाय सहायक तथा निर्बल का रक्षक बताते हैं । शेष विश्व की बात तो छोड़ दीजिए, भारत में चार करोड़ अथवा उससे भी ज्यादा भारतीय हिन्दुओं से अधिक, अनाथ, असहाय तथा निर्बल और कौन हो सकता है जिन्हें 'अस्पृश्य' माना जाता है ? अतः यदि किसी को सचमुच 'हरि का जन' कहा जा सकता है तो वे निश्चय ये असहाय, अनाथ तथा धिक्कारे गए लोग ही हैं । इसलिए मैंने 'नवजीवन' के पृष्ठों में अस्पृश्यों के लिए हमेशा 'हरिजन' शब्द का इस्तेमाल किया है । नाम बदल देने मात्र से किसी की सामाजिक स्थिति तो नहीं बदल जाती, पर कम से कम किसी के लिए ऐसे शब्द का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए जो स्वयं अपमानसूचक है । जब सवर्ण हिन्दू अपने आन्तरिक विश्वास के कारण अपनी मर्जी से अस्पृश्यता से छुटकारा पा सकेंगे, तब हम सब लोग

हरिजन कहलाएंगे क्योंकि मेरी तुच्छ राय में तब मवर्ण हिन्दू ईश्वर की वृषा के पात्र हो जाएंगे और तब वे सचमुच 'प्रभु के जन' कहे जा सकेंगे।

हरिजन सेवा एक धार्मिक कर्त्तव्य है। इसमें छल-कपट की गुजाइश नहीं है। इसे पूर्णरूप से सत्यमय तथा अहिंसक होना चाहिए। यह केवल त्याग तथा तपस्या द्वारा की जा सकती है। मुझे इस बात की काफी आशंका है कि बिना आत्मगुद्धि के हम हरिजनो के विश्वासपात्र न बन सकेंगे। यदि वे आज हमारे हर काम को सन्देह तथा अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं तो हमें इस पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। अब तक हम उनके कन्धो पर सवार रहे हैं। यदि हमें उनके साथ न्याय करना है तो हमें उनके ऊपर से अपना भार उतार लेना चाहिए और उन्हें वैसा ही समझना चाहिए जैसा हम अन्य हिन्दुओं को समझते हैं।

हरिजनो का आर्थिक तथा शैक्षणिक उत्थान नि सन्देह सवर्ण हिन्दुओं के प्रायश्चित्त का एक आवश्यक अंग है। यह उनकी ईमानदारी की एक कसौटी है। लेकिन यह उत्थान कार्य तब तक पूरा नहीं होगा, जब तक कि उनके लिए मन्दिर नहीं खोल दिए जाएंगे। मन्दिरों का खोल दिया जाना हरिजनो की धार्मिक समानता को स्वीकार करना होगा। वह इस बात का निश्चित सकेत होगा कि अब वे हिन्दू धर्म से वहिष्कृत नहीं रहे जैसे कि वे आज हैं।

और जब हरिजनो के लिए मन्दिर खोल दिए जाएंगे तब स्कूल, कुएँ तथा इसी तरह की बहुत-सी सुविधाओं के द्वार आपसे आप खुल जाएंगे।

हरिजनो को जितनी भी कठिनाइयाँ तथा कष्ट झेलने पड़ते हैं उन सबको एक निश्चित समय के अन्दर पूर्णरूप से समाप्त करने के लिए एक जोरदार आन्दोलन चलाया जाना चाहिए। अब हरिजनोद्वार को किसी अनिश्चित काल तक के लिए नहीं टाला जा सकता। स्वतन्त्रता की भाँति उमे भी तुरन्त और अभी पूरा करना होगा। यदि समाज का सबसे उपयोगी वर्ग ही अपने आवश्यक अधिकारों से वंचित रह जाता है तो स्वयं स्वतन्त्रता का ही स्वाद फीका पड़ जाएगा।

स्वराज में इस तरह का कलक जारी नहीं रहेगा कि अस्पृश्य सार्वजनिक मन्दिरों में न जा पाएँ, जबकि अन्य सब हिन्दुओं को उनमें जाने की इजाजत हो। वेदों तथा शास्त्रों की प्रामाणिकता को अमान्य नहीं किया जाएगा, परन्तु उनकी

व्याख्या कुछ खास व्यक्तियों पर नहीं छोड़ी जाएगी, बल्कि जहाँ तक वे सार्वजनिक आचार पर लागू किए जाएंगे, वह कानून के अनुसार होगी। अन्तःकरण का आदर किया जाएगा, पर सार्वजनिक नैतिकता तथा दूसरों के अधिकारों को नुकसान पहुँचाकर नहीं। जो छुआछूत मानेंगे उनको स्वयं तकलीफ होगी और उन्हें ऐसी भावनाओं का मूल्य चुकाना पड़ेगा। कानून यह कभी गवारा नहीं करेगा कि कोई व्यक्ति अथवा वर्ग, रीति-रिवाज या धर्म के नाम पर अपने को दूसरों से बड़ा समझे।

हरिजनो की वास्तविक भूख है, स्वाभिमान तथा समानतापूर्वक आदमी की तरह रहने की भूख, मनुष्य होने के नाते न्यायोचित व्यवहार की भूख, उनको जरूरत है भय से मुक्ति, सफाई, मितव्यय, परिश्रम तथा शिक्षा की। इसके लिए हमें लगन, आत्मत्याग तथा धीरज के साथ बुद्धिमत्ता से काम करने की जरूरत है। यदि आप मुझे हरिजनो को खाना खिलाने के लिए रुपया देते हैं तो मैं उसे अस्वीकार कर दूँगा क्योंकि मैं उन्हें भिखारी तथा आलसी नहीं बनाना चाहता।

मेरा विश्वास है कि यदि अस्पृश्यता को सचमुच जड़-मूल से निकाल दिया जाए तो इससे हिन्दू धर्म का एक भीषण कलक ही नहीं मिट जाएगा वरन् इसका असर विश्वव्यापी होगा। अस्पृश्यता के विरुद्ध मेरा सघर्ष मानवता में जो कुछ अपवित्र है उसके विरुद्ध सघर्ष है।

मुझे अपने जीवन के एक अनुभव का अच्छी तरह स्मरण है। यह मेरे अस्पृश्यता निवारण के लिए 21 दिन के उपवास से सम्बन्धित है। उपवास की पूर्व-रात्रि को जब मैं सोने गया तब मुझे इस बात का लेशमात्र भी खयाल न था कि मुझे अगले दिन सवेरे ही उपवास की घोषणा करनी पड़ेगी। रात को करीब 12 बजे किसी चीज ने मुझे यकायक जगा दिया और किसी आवाज ने—मैं कह नहीं सकता कि यह अन्दर की थी या बाहर की—धीमे से कहा—“तुमको अनशन करना चाहिए।” मैंने पूछा—“कितने दिन तक?” उस आवाज ने कहा—“इक्कीस दिन का।” “वह कब से शुरू हो?”—मैंने पूछा। उसने कहा—“तुम कल से शुरू कर दो।” मैं उपवास का निर्णय करने के बाद चुपचाप सो गया। सवेरे की प्रार्थना के समय तक मैंने अपने साथियों को कुछ नहीं बतलाया। उसके बाद मैंने उनके हाथ में एक कागज का टुकड़ा रख दिया जिसमें मैंने अपने उपवास की घोषणा की थी और उनसे कहा था कि इस विषय में

मुझसे कोई वहम न करें क्योंकि मेरा निर्णय अटल है। डॉक्टरों का खयाल था कि मैं इस उपवास के बाद जीवित न रह सकूँगा। लेकिन मेरे अन्दर कोई चीज कह रही थी कि मैं जीवित रहूँगा और मुझे आगे बढ़ना चाहिए। इस तरह का अनुभव मुझे अपने जीवन में इससे पहले कभी नहीं हुआ था और न उसके बाद कभी हुआ। ✓

(च) नारी समाज

स्त्री पुरुष की साथिनी होती है और उसे वही मानसिक शक्तियाँ प्राप्त हैं जो पुरुष को। उसे पुरुष की समस्त गतिविधियों में पूरी तरह भाग लेने का अधिकार है और उसे भी स्वतन्त्रता का उतना ही हक है जितना पुरुष को। उसका अपने कार्यक्षेत्र में वही स्थान है जो पुरुष का अपने कार्यक्षेत्र में। स्त्रियों की यह स्थिति तो स्वाभाविक रूप से होनी चाहिए न कि इसलिए कि वे लिप्यन्ता-पढ़ना जानती हैं। केवल दूषित रीति-रिवाज के कारण ही घोर से घोर अज्ञानी तथा अयोग्य पुरुष भी स्त्रियों में ऊँचा समझा जाता रहा है जिसका वह अधिकारी नहीं होता।

—स्त्री अहिंसा का अवतार है। अहिंसा का अर्थ है अनन्त प्रेम यानी कष्ट सहन करने की असीम शक्ति। स्त्री को छोड़कर, जो मनुष्य की माता है, और कौन है जिसमें यह शक्ति सबसे अधिक मात्रा में होती है? अपने शिशु को नौ मास तक गर्भ में रखकर तथा उसका पोषण करके और इस कष्ट-सहन में आनन्द अनुभव करके वह अपनी इस शक्ति का परिचय देती है। प्रसव वेदना से बढ़कर और कौन-सा कष्ट हो सकता है? परन्तु सृजन की खुशी में वह इस कष्ट को भुला देती है। अपने शिशु के विकास के लिए और कौन प्रतिदिन इतना कष्ट उठाता है? उसे अपने इस प्रेम को समस्त मानवता की ओर लगा देना चाहिए और इस बात को भुला देना चाहिए कि वह कभी पुरुष के भोग-विलास की चीज थी या हो सकती है। और तब उसे पुरुष की माता, जननी तथा उसकी मौन पथप्रदर्शिका के रूप में पुरुष के बराबर उसका गौरवमय स्थान प्राप्त होगा।

मेरा यह विश्वास है कि पाशविक बल की दृष्टि से जिस प्रकार पुरुष स्त्री की अपेक्षा कहीं अधिक है उसी तरह आत्मत्याग की शक्ति में स्त्री पुरुष के मुकाबले कहीं अधिक है।

स्त्री को अवला कहना उसका अपमान करना है, यह पुरुष का स्त्री के प्रति अन्याय है। यदि शक्ति का अभिप्राय पाशविक शक्ति है तो स्त्री सचमुच पुरुष की अपेक्षा कम पाशविक है। यदि शक्ति का मतलब नैतिक शक्ति है तो स्त्री पुरुष से कहीं अधिक ऊँची है। क्या स्त्री में ज्यादा सहज बुद्धि नहीं होती, क्या उसमें आत्मत्याग की भावना ज्यादा नहीं होती, क्या उसमें ज्यादा सहन शक्ति तथा साहस नहीं होता ? उसके बिना मनुष्य का अस्तित्व सम्भव नहीं है। यदि हमारा अस्तित्व अहिंसा पर निर्भर है तो भविष्य स्त्री के हाथों में है।

यदि मैं स्त्री के रूप में जन्मा होता तो पुरुष के इस दम्भ के विरुद्ध कि स्त्री पुरुष के मनोरंजन की वस्तु है, विद्रोह कर देता। मैं मानसिक रूप से स्त्री बन गया हूँ जिससे कि मैं उसके हृदय में प्रवेश पा सकूँ—मैं अपनी पत्नी के हृदय में तब तक प्रवेश नहीं कर सका, जब तक कि मैंने उसके प्रति अपने वर्तन को बदल देने का निश्चय नहीं कर लिया, और इसलिए मैंने अपने उन सब तथाकथित अधिकारों को, जो मुझे पति होने के नाते प्राप्त थे, त्याग दिया और अपनी पत्नी को उसके सारे अधिकार लौटा दिए।

पुरुष ने जितने भी पाप किए हैं उन सब में सबसे ज्यादा जघन्य तथा क्रूर पाप है स्त्री जाति के साथ दुर्व्यवहार, जो मेरी दृष्टि में अवला नहीं है, वरन् उसका उत्तम अर्धांग है। स्त्री पुरुष से ज्यादा ऊँची होती है, क्योंकि वह त्याग, मौन कष्ट-सहन, विनम्रता, विश्वास तथा ज्ञान की मूर्ति है।

स्त्री को अपने को पुरुष के भोग-विलास की वस्तु समझना छोड़ देना चाहिए। इसका उपाय पुरुष की अपेक्षा स्त्री के हाथों में ज्यादा है।

जीवन में जो कुछ पवित्र तथा धार्मिक है उस सब की स्त्रियाँ विशिष्ट संरक्षिका हैं। स्वभाव से रुढ़िवादी होने के कारण यदि अन्धविश्वासपूर्ण आदतों को ढेर में छोड़ती हैं तो वे जीवन की पवित्र तथा उदात्त चीजों को भी जल्दी नहीं त्यागती हैं।

यह बड़े दुःख की बात है कि स्मृतियों में ऐसे भी स्थल हैं, जिनका वे लोग आदर नहीं कर सकते जो स्त्री की स्वतन्त्रता को उतना ही महत्व देते हैं जितना अपनी स्वतन्त्रता को तथा जो स्त्री को मानव की माता समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि स्मृतियों में ऐसे भी स्थल हैं जो स्त्री को उसका यथोचित स्थान देते हैं तथा उसको बहुत सम्मान प्रदान करते हैं। प्रश्न यह उठता है कि उन स्मृतियों

का क्या किया जाए जिनमें ऐसे पाठ हैं जिनका उन्ही स्मृतियों के दूसरे पाठों से मेल नहीं खाता और जो नैतिक भावना के प्रतिकूल हैं। मैंने अनेक बार यह बात कही है कि शास्त्रों के नाम पर जितनी चीजें छपी जाती हैं उन सबको देव वाणी अथवा वेदवाक्य के रूप में मानने की जरूरत नहीं है। लेकिन हर व्यक्ति यह नहीं तय कर सकता कि कौन-सी चीज अच्छी तथा प्रामाणिक है और कौन-सी चीज बुरी तथा प्रक्षिप्त है। इसलिए कोई ऐसी अधिकारी समिति होनी चाहिए जो उन सब ग्रंथों का, जिन्हें शास्त्र की सजा दी जाती है, सशोधन करे और उनमें से उन स्थलों को निकाल दे जिनका कोई नैतिक मूल्य नहीं है अथवा जो धर्म तथा नैतिकता के आधारभूत सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं, और इस प्रकार का एक उपयुक्त संस्करण हिन्दुओं के पथ-प्रदर्शन के लिए तैयार करे। यद्यपि यह निश्चित है कि ममस्त हिन्दू जनता तथा वे लोग जो धार्मिक नेता माने जाते हैं, इस तरह सशोधित ग्रंथ की वैधता को स्वीकार नहीं करेंगे, तथापि इससे इस पवित्र काम में बाधा नहीं पड़नी चाहिए। निष्ठा-पूर्वक तथा सेवाभाव से किए गए काम का अन्ततोगत्वा सब पर अमर पड़ेगा और उससे उन लोगों को अवश्यममेव सहायता मिलेगी जिनको उनकी अत्यन्त जरूरत है।

हिन्दू सभ्यता ने पत्नी को पति का पूरा गुलाम बना कर उसे अत्यधिक अधिकार देने की गलती की है और इस बात पर जोर दिया है कि पत्नी का पति से पृथक् कोई व्यक्तित्व ही नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ है कि कभी-कभी पति ऐसा अधिकार हथिया लेता है और उसका इस्तेमाल करता है कि वह पशु बन जाता है।

स्त्रियों के अधिकार के सम्बन्ध में मैं कोई भी समझौता करने को तैयार नहीं हूँ। मेरी राय में स्त्रियों पर कोई भी ऐसी कानूनी पाबन्दी नहीं लगाई जानी चाहिए जो पुरुषों पर भी न लागू होती हो। मैं लड़कें और लड़कियों के माय पूर्ण समानता के दस्तावेज का पक्षपाती हूँ। स्त्रियों में जैसे-जैसे शिक्षा का प्रसार होगा वैसे-वैसे वे अपनी शक्ति को ममझने लगेंगी, जैसा कि उन्हें करना चाहिए, और तब वे अपने प्रति बरती जाने वाली विषमता का स्वाभाविक रूप से विरोध करेंगी।

अगर पति देवता है तो पत्नी भी देवी है। वह दासी नहीं बल्कि

मित्र तथा साथिनी है जिसके अधिकार समान हैं । पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे के गुरु हैं ।

बेटी का हिस्सा बेटे के हिस्से के बराबर होना चाहिए । पति की कमाई पति तथा पत्नी दोनों की संयुक्त सम्पत्ति होती है । क्योंकि पति पत्नी की सहायता से, चाहे वह रसोई का काम ही करता हो, धन कमाता है ।

यदि पति अपनी पत्नी के साथ अन्याय करता है तो पत्नी को अलग रहने का अधिकार है ।

बच्चों पर दोनों के अधिकार समान हैं । बच्चों के बड़े हो जाने पर उनके ये अधिकार समाप्त हो जाते हैं । यदि माता-पिता में से कोई भी इन अधिकारों के अयोग्य हो जाता है तो बच्चों के बड़े होने के पहले ही उसके ये अधिकार समाप्त हो जाते हैं ।

संक्षेप में, मैं स्त्री और पुरुष के बीच कोई भेद नहीं मानता सिवा उसके कि जो प्राकृतिक या शारीरिक है ।

दहेज की घृणित प्रथा की भर्त्सना के लिए जोरदार लोकमत तैयार किया जाना चाहिए, और जो युवक इस क्षुद्र तरीके से दहेज लेते हैं उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया जाना चाहिए । लड़कियों के माता-पिताओं को अग्रेजी डिग्रियों के रोब में नहीं आना चाहिए और उन्हें अपनी पुत्रियों के लिए अच्छे पात्र की तलाश में अपनी छोटी-छोटी जातियों तथा प्रान्तों के संकुचित दायरे से बाहर जाने में हिचकिचाना नहीं चाहिए ।

इसमें सन्देह नहीं कि (दहेज की) प्रथा एक निर्मम प्रथा है । इसे खत्म होना है । शादी को सौदा नहीं बनाना चाहिए । इस दहेज प्रणाली का जाति से बहुत निकट सम्बन्ध है । जब तक वर-वधू का चुनाव किसी विशेष जाति के युवक-युवतियों तक सीमित रहेगा तब तक यह प्रथा, उसके चाहे जितना विरोध हो, कायम रहेगी । यदि इस बुराई को समाप्त करना है तो लड़के-लड़कियों अथवा उनके माता-पिताओं को जाति के बन्धनों को तोड़ना होगा ।

हम धर्म के नाम पर गोरक्षा के लिए आवाज उठाते हैं, लेकिन बाल विधवा रूपी मानवीय गाय की रक्षा करने से हम इनकार कर देते हैं । धर्म में जोर-जबर्दस्ती का हमें विरोध करना चाहिए । लेकिन हम अपनी बाल विधवाओं पर जो विवाह सस्कार के महत्व को भी नहीं समझ पाती, धर्म के नाम पर जबर्दस्ती

वैधव्य लादते हैं। छोटी-छोटी लड़कियों पर जबरदस्ती वैधव्य लादना एक पाशविक अपराध है जिसके लिए हम हिन्दू लोग प्रतिदिन महंगी कीमत चुका रहे हैं। यदि हमारा अन्तःकरण सचमुच जाग्रत हो गया होना तो 15 वर्ष की आयु में पहले शादियां न होती, बाल विधवाओं की तो बात ही क्या और उनके बारे में हम यह धोपणा करते कि धार्मिक दृष्टि से उनका विवाह कभी हुआ ही नहीं। इस तरह के वैधव्य की किमी भी शास्त्र में व्यवस्था नहीं है। जब कोई स्त्री, जिसने अपने जीवन साथी के स्नेह का अनुभव किया है, जानबूझकर स्वेच्छा से वैधव्य स्वीकार करती है तब उससे जीवन में शालीनता तथा गरिमा आ जाती है, घर पवित्र हो जाता है और स्वयं धर्म का उत्थान होता है।

प्रश्न—आपने हम लोगों में व्याप्त अनेक मामाजिक बुराईयां का जिक्र किया है। ये बुराईयां अवश्य हैं, लेकिन यदि पुरुष मामाजिक परिवर्तन नहीं करना चाहते तो हम स्त्रियां इस सम्बन्ध में क्या कर सकती हैं ?

उत्तर—स्त्रियों को अपने को पुरुषों के मातहत अथवा उनमें नीचा समझने का कोई कारण नहीं है। सभी भाषाओं में स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी कहा गया है और इस तर्क के अनुसार पुरुष स्त्री का अर्धांग है। वे दो अलग-अलग तत्व नहीं बल्कि एक ही तत्व के दो बराबर भाग हैं। अंग्रेजी भाषा इसमें भी जागे बढ़ गई है। उसमें स्त्री को पुरुष का ब्रेहतर अर्धांग बताया गया है। इसलिए मैं स्त्रियों को सभी अवाञ्छनीय तथा अनावश्यक नियन्त्रणों के विरुद्ध सविनय विद्रोह करने की सलाह देता हूँ। सभी नियन्त्रण लाभकारी हों इसके लिए जरूरी है कि ये स्वेच्छापूर्वक अपनाए गए हों। सविनय विद्रोह से किमी को नुकसान पहुंचने की सम्भावना नहीं रहती। इसके लिए पहली शर्त यह है कि वह शुद्ध तथा तकसगन हो।

वहनों, मैं चाहता हूँ कि आप हरिजनो के काम के लिए जितना भी (धन) दे सकें दें। आपने मुझ से पूछा है कि आप हरिजनो की सेवा किस तरह कर सकती है। मैं चाहता हूँ कि आप सबसे पहले अपने हृदय से अस्पृश्यता के भाव को निकाल दें और हरिजन लड़के-लड़कियों की उसी तरह सेवा करें जिस तरह आप अपने बच्चों की सेवा करती हैं। आपको उन्हें अपने गिश्तेदार, अपने भाई-बहन तथा अपनी भारत माता की मतान के रूप में प्यार करना चाहिए। मैं स्त्री को, सेवा तथा त्याग की भावना की जीवित मूर्ति के रूप में पूजता हूँ। निःस्वार्थ सेवा

भाव में जिसे प्रकृति ने आपको प्रदान किया है, पुरुष आपकी अभी बराबरी नहीं कर सकता ।

स्त्री का हृदय सहानुभूतिशील होता है जो कष्ट को देखकर पिघल जाता है । अतः यदि हरिजनो के कष्टों से आप द्रवित हो जाती है और अस्पृश्यता का त्याग कर देती है और उसके साथ-साथ ऊँच-नीच के भेदभाव को भी भुला देती है तो हिन्दू धर्म शुद्ध हो जाएगा और हिन्दू समाज तेजी से आध्यात्मिक प्रगति करेगा । अन्ततोगत्वा इसका मतलब होगा ममूचे भारत की यानी 35 करोड़ लोगों की भलाई ।

मुझे अपने व्यस्त जीवन में, जिसमें तरह-तरह के अनुभव हुए हैं, बहुत-से मार्मिक तथा हृदयस्पर्शी दृश्य देखने का मौका मिला है । लेकिन यह लिखते समय मुझे जिस सबसे अधिक मार्मिक दृश्य की याद आ रही है वह है हरिजनो की समस्या । वदागरा में मैंने अपना भाषण अभी समाप्त किया था । इसमें मैंने स्त्रियों से अपने गहने भेंट करने की अपील की थी । मैंने अपना भाषण समाप्त ही किया था और भेंट में मिली वस्तुओं को जव वेच रहा था तो ठीक उसी समय कौमुदी नाम की एक 16-वर्षीय कन्या धीरे-धीरे चल कर मंच पर आई । उसने अपनी एक चूड़ी उतार कर मुझ से पूछा कि क्या मैं उसे अपना हस्ताक्षर दूंगा । मैं अपना हस्ताक्षर देने की तैयारी कर ही रहा था कि उसकी दूसरी चूड़ी भी निकल आई । उसके दोनों हाथों में केवल एक-एक चूड़ी थी । मैंने कहा—“तुम्हें दोनों चूड़िया देने की जरूरत नहीं है । मैं केवल एक चूड़ी के ही बदले में अपने हस्ताक्षर दे दूंगा ।”

इसका उत्तर उमने अपना सोने का हार उतार कर दिया । उसे उतारना सरल काम नहीं था क्योंकि उसे अपने लम्बे वालों की वेणी से निकालना था । लेकिन मालावारी लड़की होने के नाते उसे हजारों स्त्री-पुरुषों की आश्चर्यचकित भीड़ के सामने अपना हार उतारकर देने में कोई मिथ्या सकोच नहीं हुआ । मैंने पूछा—“लेकिन क्या तुमने अपने माता-पिता की अनुमति ले ली है ?” उसने कोई उत्तर नहीं दिया । अभी उसके गहनो के त्याग का कार्य पूरा नहीं हुआ था । उसके हाथ अपने आप उसके कानों पर पहुँच गए और जनता की हर्षध्वनि के बीच जो अपनी खुशी को अब नहीं रोक पा रही थी, उसने हीरे-मोती के कर्ण-फूल उतारकर दे दिए । मैंने उससे फिर पूछा कि तुम जो त्याग कर रही हो क्या उसके लिए अपने माता-पिता की स्वीकृति प्राप्त कर ली है । वह शर्मीली लड़की

मुझे कोई उत्तर दे सके, इसके पूर्व ही किमी ने मुझे बताया कि उमका पिता मभा में मौजूद है और जिन मानपत्रों का मैं नीलाम कर रहा था उनके लिए बोली लगा रहा था और मुझे यह भी बताया गया कि वह अच्छे कामों के लिए धन देने में उतना ही उदार है जितनी उसकी लड़की । मैंने कौमुदी को यह जता दिया कि तुम्हें इन गहनों के एवज में नए गहने नहीं बनवाने हैं । उसने दृढ़तापूर्वक इस शर्त को मान लिया । जब मैंने उसे अपने हस्ताक्षर दिए तो उसमें पहले मैंने यह लिखा कि "तुम्हारा त्याग तुम्हारे उन आभूषणों से ज्यादा अच्छा आभूषण है, जिनका तुमने त्याग किया है ।"

(छ) राष्ट्रभाषा

हमारी भाषा हमारा ही प्रतिबिम्ब होती है, और यदि आप मुझमें यह कहते हैं कि हमारी भाषा इतनी अशक्त है कि उनके द्वारा सर्वोत्तम विचार व्यक्त नहीं किए जा सकते तो मैं यह कहूंगा कि हमारा अस्तित्व जितनी जल्दी समाप्त हो जाए उतना ही हमारे लिए अच्छा होगा । क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो यह कल्पना करता हो कि अंग्रेजी कभी भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती है ? राष्ट्र पर यह मुसीबत क्यों डाली जाए ? — मुझे पूना के कुछ प्राध्यापकों के माथ घनिष्ठ बातचीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था । उन्होंने मुझे यह विश्वास दिलाया कि हर एक भारतीय युवक, चूंकि वह अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा पाता है, अपने जीवन के कम से कम छह बहुमूल्य वर्ष व्यर्थ गवा देता है । इस मर्यादा को हमारे स्कूलों तथा कालेजों से निकलनेवाले विद्यार्थियों की मर्यादा में गुणा कीजिए और फिर स्वयं यह पता लगाइए कि राष्ट्र ने कितने हजार वर्ष गवा दिए हैं । हमारे ऊपर आरोप यह लगाया जाता है कि हमारे अन्दर आगे बढ़ने की शक्ति नहीं है । हमारे अन्दर यह शक्ति हो ही कैसे सकती है जबकि हम अपने जीवन के बहुमूल्य वर्षों को एक विदेशी भाषा पर अधिकार प्राप्त करने में लगा देना पड़ता है ? इस प्रयास में भी हम विफल हो जाते हैं ।

वास्तव में, हम अंग्रेजी पर कभी अधिकार नहीं प्राप्त कर पाते, कुछ थोड़े-से लोगो को छोड़ कर हम लोगो के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं हो सका है । हम अंग्रेजी में अपनी भावनाओं को उतनी अच्छी तरह कभी व्यक्त नहीं कर सकते जितनी अच्छी तरह अपनी मातृभाषा में । हम अपने बचपन के मारे वर्षों की याद

कैसे भुला सकते हैं ? पर जब हम अपनी उच्चतर शिक्षा, जैसा कि हम उसे कहते हैं, एक विदेशी भाषा के माध्यम से शुरू करते हैं तब हम ठीक यही काम करते हैं। इससे हमारे जीवन का क्रम भग हो जाता है जिसके लिए हमें बहुत भारी मूल्य चुकाना होगा।

मैंने लोगो को यह कहते सुना है कि अंग्रेजी शिक्षाप्राप्त भारतीय ही नेतृत्व कर रहे हैं तथा देश के लिए सभी काम कर रहे हैं। यदि ऐसी बात न होती तो बहुत ही बुरा होता। जो शिक्षा हमें मिलती है वह मात्र अंग्रेजी शिक्षा ही है। हमें उसका कुछ न कुछ फायदा तो अवश्य दिखाना चाहिए। लेकिन मान लीजिए कि हमें पिछले पचास वर्षों में अपनी भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षा मिली होती तो आज स्थिति क्या होती। आज भारत स्वतंत्र होता। हमारे शिक्षित लोग अपने ही देश में विदेशियो जैसे न होते वरन् उनकी वाणी देश के हृदय को छूती, गरीब से गरीब लोगो के बीच वे काम करते और पिछले पचास वर्षों में वे जो कुछ हासिल करते वह राष्ट्र की एक विरासत होती। आज हमारी पत्निया तक हमारे अच्छे से अच्छे विचारों में शरीक नहीं हो पाती। प्रोफेसर वसु और प्रोफेसर राय तथा उनके शानदार अनुसन्धानों पर दृष्टिपात कीजिए। क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि आम जनता को उनके अनुसन्धानों के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

हम समाज की सबसे बड़ी सेवा यह कर सकते हैं कि अंग्रेजी भाषा के ज्ञान प्राप्ति को हम जो झूठा महत्व देना सीख गए हैं, उससे अपने को तथा समाज को मुक्त करे। हमारे स्कूलों और कालेजों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। यह देश की राष्ट्रभाषा होती जा रही है। हमारे सर्वोत्तम विचार इसी भाषा में व्यक्त किए जाते हैं। अंग्रेजी शिक्षण की आवश्यकता में इस विश्वास के कारण हम दास बन गए हैं। इसने हमें सच्ची राष्ट्रसेवा के अयोग्य बना दिया है। यदि हम आदत से मजबूर न होते तो हम यह अनुभव कर सकते थे कि शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण हमारी प्रतिभा बिल्कुल अलग-थलग हो गई है, हम आम जनता से अलग हो गए हैं, देश की सर्वोत्तम मेधा बन्दी बन गई है और जो नए विचार हमें मिले हैं उनसे आम जनता को कोई फायदा नहीं हुआ है। पिछले 60 वर्षों से ज्ञान सचय करने के बजाय हम नए-नए शब्दों तथा उनके उच्चारण रटने में लगे रहे हैं। हमने अपने माता-पिता से प्राप्त ज्ञान

की नींव पर निर्माण करने के बजाय उसे लगभग भुला दिया है। इतिहास में उस तरह का और कोई उदाहरण नहीं मिलता। यह राष्ट्र का दुर्भाग्य है।

हम समाज की पहली तथा सबसे बड़ी सेवा यह कर सकते हैं कि हम अपनी देशी भाषाओं को पुनः अपनाएँ, हिन्दी को उसके राष्ट्रभाषा के स्वाभाविक पद पर फिर से प्रतिष्ठित करें, और अपने समस्त प्रान्तीय कार्यों को अपनी-अपनी प्रान्तीय भाषाओं में तथा राष्ट्रीय कामों को हिन्दी में करना शुरू करें। जब तक हमारे स्कूल तथा कालेज हमें देशी भाषाओं के माध्यम में शिक्षा नहीं देने लगते तब तक हमें चैन से नहीं बैठना चाहिए।

आज अंग्रेजी का अध्ययन उसके व्यापारिक एवम् तथाकथित राजनीतिक महत्त्व के कारण किया जाता है। हमारे लड़के यह सोचते हैं और वर्तमान परिस्थितियों में उनका यह सोचना सही भी है कि अंग्रेजी के बिना उन्हें सरकारी नौकरी नहीं मिल सकती। लड़कियों को अच्छी शादी के लिए अंग्रेजी पढ़ाई जाती है। मैं ऐसी अनेक स्त्रियों को जानता हूँ जो अंग्रेजी इसलिए सीखना चाहती हैं जिनमें वे अंग्रेजों में अंग्रेजी में बातें कर सकें। मैं ऐसे पतियों को भी जानता हूँ जो उस बात से दुखी हैं कि उनकी पत्नियाँ उनसे तथा उनके मित्रों में अंग्रेजी में बातचीत नहीं कर सकती। ऐसे परिवारों को भी जानता हूँ जिनमें अंग्रेजी को मातृभाषा का रूप दिया जा रहा है। देशी भाषाओं का कुचला जाना तथा उन्हें निर्बल बनाना—जैसा कि उनके साथ हुआ है—मेरे लिए अमह्य है। मैं इस बात को सहन नहीं कर सकता कि मा-बाप अपने बच्चों को तथा पति अपनी पत्नियों को अपनी भाषाओं को छोड़कर अंग्रेजी में पत्र लिखें।

यद्यपि मैंने पश्चिमी सभ्यता के प्रति अपने ऋण को खुले आम स्वीकार किया है तथापि मैं यह कह सकता हूँ कि राष्ट्र की जो कुछ भी सेवा मैं कर सका हूँ उसका एकमात्र कारण यह है कि जिस हृद तक मुझे वन पड़ा मैंने पूर्वी सभ्यता को अपने अन्दर कायम रखा। यदि मैं अंग्रेजियत के रंग में रंगा होता, राष्ट्रीय भावना से रहित होता और आम जनता के तौर-तरीकों, आदतों, विचारों तथा महत्वाकांक्षाओं से अनभिज्ञ होता, उनकी कम परवाह करता और कदाचित् उनमें नफरत भी करता तो मैं आम जनता के लिए बिल्कुल बेकार साबित होता।

जब कभी मैंने विद्यार्थियों की सभाओं में भाषण किया है, मुझे अंग्रेजी में बोलने की माँग पर आश्चर्य हुआ है। आपको मालूम है अथवा होना चाहिए कि

मैं अंग्रेजी भाषा का प्रेमी हूँ। लेकिन मेरी धारणा है कि यदि भारत के विद्यार्थी, जिनसे यह आशा की जाती है कि देश के लाखों-करोड़ों लोगों के साथ मिल कर काम करेंगे और उनकी सेवा करेंगे, अंग्रेजी की बजाय हिन्दी की ओर अधिक ध्यान दें तो वे इस काम के लिए ज्यादा योग्य बनेंगे। मैं यह नहीं कहता कि आपको अंग्रेजी नहीं सीखनी चाहिए, आप अवश्य सीखिए लेकिन जहाँ तक मेरा विचार है वह करोड़ों भारतीयों की भाषा नहीं हो सकती। वह हजारों अथवा लाखों व्यक्तियों तक ही सीमित रहेगी, करोड़ों तक नहीं पहुँच सकती। अतः जब छात्रगण मुझसे हिन्दी में बोलने के लिए कहते हैं तब मुझे खुशी होती है।

अब हम राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार करें। यदि अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा होनी है तो उसे हमारे स्कूलों में एक अनिवार्य विषय बना दिया जाना चाहिए। पहले हम इस बात पर विचार करें कि क्या अंग्रेजी हमारी राष्ट्रभाषा बन सकती है ?

हमारे कुछ विद्वानों का, जो अच्छे देशभक्त भी हैं, कहना है कि इस प्रश्न को उठाना ही अज्ञान का द्योतक है। उनकी राय में वह तो राष्ट्रभाषा है ही।

सतही तौर पर विचार करने पर उक्त मत सही मालूम होता है। हमारे समाज के शिक्षित वर्ग को देखने से मालूम होता है कि अंग्रेजी के न रहने पर हमारा सारा काम ठप्प हो जाएगा। लेकिन गहराई से विचार करने पर पता चलेगा कि अंग्रेजी न तो हमारी राष्ट्रभाषा बन सकती है और न बननी चाहिए।

आइए देखें कि किसी भाषा के राष्ट्रभाषा बनने के लिए क्या-क्या बातें जरूरी हैं।

1. सरकारी अधिकारियों के लिए उसका सीखना आसान होना चाहिए।
2. वह भारत भर में धार्मिक, आर्थिक, तथा राजनीतिक विचार-विनिमय का माध्यम बनने के योग्य होनी चाहिए।
3. वह अधिकांश भारतीयों द्वारा बोली जानी चाहिए।
4. समूचे देश के लोगों के लिए उसका सीखना सरल होना चाहिए।
5. इस भाषा का चुनाव करते समय अस्थायी अथवा क्षणिक हितों का खयाल नहीं रखा जाना चाहिए।

अंग्रेजी इनमें से किसी भी शर्त को पूरा नहीं करती।—तब वह कौन-सी भाषा

है जो इन पाचो शतों की पूर्ति करती है ? हमें मानना पड़ेगा कि वह हिन्दी ही है ।

मुझे इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दुस्तानी समस्त भारतीयों के लिए सबसे उपयुक्त अन्तरप्रान्तीय भाषा होगी । आम जानता न तो फारसी-मरी उर्दू आसानी से समझ सकती है और न सस्कृतनिष्ठ भाषा हिन्दी । ब्रिटिश राज के समाप्त होने पर बोलचाल के सामान्य माध्यम अथवा अदालती भाषा के रूप में अंग्रेजी नहीं रह सकती । यह तो कोरी अनधिकार चेष्टा है । मैं अंग्रेजी भाषा का उमके अपने स्थान पर आदर करता हूँ । वह भारत की राष्ट्रभाषा कभी नहीं हो सकती ।

लेकिन अब ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रभाषा के बारे में झगडा छडा हो गया है । कौन-सी भाषा राष्ट्रभाषा हो ? मुझे बताया गया है कि देवनागरी लिपि में लिखी गई हिन्दी राष्ट्रभाषा होगी । मैं इसमें कभी सहमत नहीं हो सकता । मैं दो बार हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अध्यक्ष रह चुका हूँ । मैं हिन्दी और उर्दू का शत्रु नहीं हो सकता । लेकिन मैंने अनुभव किया है कि सामान्य व्यक्ति की भाषा यानी भारत की राष्ट्रभाषा देवनागरी तथा उर्दू लिपियों में लिखी जाने वाली सरल हिन्दी तथा सरल उर्दू का सम्मिश्रण अर्थात् हिन्दुस्तानी हो सकती है । मुसलमानों को छोट दीजिए, मैं ऐसे बहुत-से हिन्दुओं को जानता हूँ जो सस्कृतनिष्ठ हिन्दी नहीं समझ पाते और न वे देवनागरी लिपि में लिख ही सकते हैं । अतः मैं हिन्दुस्तानी का ही समर्थन करूँगा चाहे इसके पक्ष में मैं अकेला ही होऊँ ।

भारत में विदेशी भाषा के माध्यम से उच्च शिक्षा देने के कारण राष्ट्र की अपार बौद्धिक तथा नैतिक क्षति हुई है । हम अपने समय के इतने निकट हैं कि इस बात का निर्णय नहीं कर सकते कि इससे कितनी गहरी क्षति हुई है । हम लोग, जिन्होंने इस तरह की शिक्षा पाई है, नहीं समझ सकते कि हमारी कितनी हानि हुई है । चाहे कुछ भी हो, शिक्षा का माध्यम तत्काल बदल दिया जाना चाहिए और प्रान्तीय भाषाओं को उनका समुचित स्थान दिया जाना चाहिए । प्रतिदिन बढ़नेवाली अक्षम्य हानि की अपेक्षा, मैं कुछ समय के लिए उच्च शिक्षा में अव्यवस्था को ज्यादा पसन्द करूँगा ।

सस्कृत के अध्ययन की शोचनीय उपेक्षा की जा रही है । मैं ऐसी पीढ़ी का हूँ जो प्राचीन भाषाओं के अध्ययन को उपयोगी समझती थी । मैं यह नहीं मानता कि

यह अध्ययन समय और मेहनत की वरवादी है। मेरा विश्वास है कि इससे आधुनिक भाषाओं के अध्ययन में मदद मिलती है। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, यह बात किसी अन्य प्राचीन भाषा के मुकाबले संस्कृत के बारे में ज्यादा सत्य है, और प्रत्येक राष्ट्रभक्त को इसका अध्ययन करना चाहिए क्योंकि उससे प्रान्तीय भाषाओं का अध्ययन अधिक सरल हो जाता है। यह वह भाषा है जिसमें हमारे पूर्वजों ने चिन्तन-मनन किया तथा लिखा। कोई भी हिन्दू बालक अथवा बालिका, यदि उसे अपने धर्म की भावना को समझना है, ऐसा नहीं होना चाहिए जिसे संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान न हो।

(ज) विद्यार्थियों से

वर्तमान स्थिति को देखते हुए हमें इस बात पर विचार करना है कि विद्यार्थी क्या कर सकते हैं, और देश की सेवा के लिए और क्या कर सकते हैं। मेरी तथा अन्य बहुत-से लोगों की राय में, जो इस बात के लिए उत्सुक हैं कि विद्यार्थी समाज अपना कर्तव्य अच्छी तरह पालन करे, इसका उत्तर यह है कि विद्यार्थियों को अपने अन्तर को टटोलना है और उन्हें अपने व्यक्तिगत आचरण का ध्यान रखना है। अच्छी शिक्षा के लिए व्यक्तिगत जीवन की पवित्रता एक अपरिहार्य शर्त है। हजारों विद्यार्थियों से मेरी जो मुलाकात होती रहती है और उनसे मेरा जो बराबर पत्र-व्यवहार होता रहता है, जिसमें वे अपने अन्तरात्म के भावों को व्यक्त करते हैं और मुझ पर भरोसा करते हैं, उससे मुझे स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि अभी बहुत-कुछ करना बाकी है।—समस्त ज्ञान का लक्ष्य चरित्र-निर्माण होना चाहिए।

ईसाई, हिन्दू तथा ससार के अन्य महान धर्मों का अध्ययन करते हुए मैंने यह पाया कि सब धर्मों में हम जो अनन्त विभिन्नता देखते हैं उस सबके बीच एक आधारभूत एकता विद्यमान है और वह है सत्य तथा शुद्धता। शुद्धता का शाब्दिक अर्थ है हत्या और हिंसा न करना। और यदि तुम बालक हमेशा सत्य तथा सरलता पर दृढ़ रहोगे तो तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारी नींव ठोस है।

सचाई सबसे बड़ी कुजी है। चाहे कौसी भी परिस्थिति हो, झूठ मत बोलो, किसी बात को छिपाओ मत, अपने अध्यापकों तथा बड़ों पर भरोसा करके उन्हें हर एक बात सच-सच बतलाओ। किसी के प्रति दुर्भाव मत रखो, किसी के

पीठ पीछे उमकी बुराई बात मत करो, सबसे बड़ी बात यह है कि 'तुम स्वयं अपने प्रति मच्चे रहो' जिसमें किसी दूसरे के प्रति झूठे न बनो। जीवन के छोटे से छोटे काम में मचाई बरतना ही पवित्र जीवन का एकमात्र रहस्य है।

इसलिए मैं लडके-लडकियों से कहता हूँ ईश्वर में विश्वास कभी मत खोओ, और इसलिए स्वयं अपने अन्दर भी विश्वास मत खोओ, और याद रखो कि यदि तुम एक भी बुरे विचार, एक भी पापपूर्ण विचार को अपने मन में जगह देते हो तो इसका मतलब है कि तुम्हारे अन्दर इस विश्वास की कमी है। मिथ्यावादिता, अनुदारता, हिंसा तथा इन्द्रियलोलुपता—इन सब चीजों का इस विश्वास के साथ मेल नहीं बैठता। याद रखो कि इस दुनिया में हम स्वयं अपने जिनने बड़े शत्रु हैं, उतना और कोई नहीं। भगवद्गीता के प्रायः हर श्लोक में यह बात कही गई है। यदि मैं 'सरमन आन दि माउण्ट' की शिक्षा का मार निकालू तो मुझे यही उत्तर मिलेगा। कुरान का अध्ययन करने पर भी मैं इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ। हम स्वयं अपना जितना अनिष्ट कर सकते हैं उतना और कोई नहीं कर सकता। अतः यदि तुम लोग बहादुर हो तो तुम इन सब बुरे विचारों के विरुद्ध जी-जान में तथा बहादुरी से संघर्ष करोगे। इस दुनिया में कोई भी पापपूर्ण काम पापपूर्ण विचार की प्रेरणा के बिना कभी नहीं हुआ। तुम्हें अपने हृदय में उठनेवाले हर विचार पर कड़ी निगरानी रखनी होगी।

धार्मिक शिक्षा का सबसे अच्छा ढंग क्या है, यह जानने के लिए मैंने अनेक लड़कों पर प्रयोग किए हैं और मैंने यह देखा है कि किताबी शिक्षा में जहाँ कुछ मदद मिलती है वहाँ अवैली किताबी शिक्षा बेकार है। मैंने देखा कि धार्मिक शिक्षा, अध्यापकों के धर्मानुकूल आचरण से दी जाती है। मैंने यह भी देखा है कि लड़के शिक्षकों के आचरण से जितना सीखते हैं उतना वे उन पुस्तकों से, जिनको वे पढ़ाते हैं अथवा उनके व्याख्यानो से नहीं सीखते। मुझे यह देखकर खुशी हुई है कि लड़के-लड़कियों में चीजों को जानने-समझने की एक ऐसी शक्ति होती है जिसका उन्हें स्वयं भान नहीं होता और जिसके जरिए वे अपने अध्यापकों के विचारों को जान लेते हैं। विचार है उस अध्यापक को जो मुख से कुछ कहता है और मन में कुछ रखता है।

आपकी सारी विद्वत्ता, आपका शेक्सपियर तथा वर्डस्वर्थ का सारा अध्ययन बेकार हो जाएगा यदि आप साथ-साथ अपना चरित्र-निर्माण नहीं करते और अपने

विचारो तथा कार्यों पर पूर्ण नियंत्रण नहीं प्राप्त कर लेते । जब तुम अपने ऊपर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त कर लोगे और अपनी इच्छाओं को नियंत्रण में रखना सीख लोगे, तब तुम निराशापूर्ण वाते नहीं करोगे ।

हम लोगो को विरासत में एक ग्रामीण सभ्यता मिली है । हमारा देश इतना बड़ा है, इसकी आबादी इतनी अधिक है और इसकी स्थिति तथा जलवायु ऐसी है कि मेरी राय में यहाँ ग्रामीण सभ्यता का होना स्वाभाविक है । इसकी खराबियाँ सर्वविदित हैं पर उनमें से कोई भी ऐसी नहीं है जिसे दूर न किया जा सके । उसे हटाना और उसकी जगह शहरी सभ्यता स्थापित करना तब तक असम्भव है जब तक कि हम किसी जोरदार तरीके से आबादी को तीस करोड़ से घटाकर तीस लाख अथवा तीन ही करोड़ करने को तैयार न हो जाए । अतः मैं यह मानकर कि हमें वर्तमान ग्रामीण सभ्यता को कायम रखना है और उसकी मानी हुई बुराइयों को दूर करने का प्रयास करते रहना है, इसका इलाज बता सकता हूँ । यह तभी किया जा सकता है जब कि देश के युवक ग्रामीण जीवन अपना लें । और यदि वे ऐसा करते हैं तो उन्हें अपने जीवन को नए ढंग से ढालना चाहिए और अपनी छुट्टियों का प्रत्येक दिन अपने कालेजों अथवा हाई स्कूलों के इर्द-गिर्द के गावों में बिताना चाहिए, और जिन्होंने अपनी शिक्षा पूरी कर ली है अथवा जो शिक्षा ग्रहण नहीं कर रहे हैं, उन्हें गावों में बसने की बात सोचनी चाहिए । वे गावों में जाएं तो उन्हें वहाँ सेवा, अनुसंधान तथा सच्चे ज्ञान का असीमित क्षेत्र मिलेगा । अच्छा तो यह होगा कि प्राध्यापकगण लड़कों अथवा लड़कियों को छुट्टियों में पढ़ने-लिखने का काम न दे बल्कि उनको गावों में जाकर शिक्षाप्रद काम करने को कहें । छुट्टियों का उपयोग मनोरंजन के लिए करना चाहिए, पुस्तकें कण्ठस्थ करने के लिए कभी नहीं ।

विद्यार्थियों को, यदि अपना सारा खाली समय नहीं, तो उसका कुछ हिस्सा हरिजनो की सेवा में लगाना चाहिए ।——मैंने यह देखा है कि यदि मुझे ऐसे बहुत-से सहयोगी मिल जाएं जो अपना खाली समय दे सकें तो काफी काम हो सकता है ।

यह समस्या भाड़े के टट्टुओं से नहीं सुलझाई जा सकती । रुपये के बल पर, चाहे उसकी राशि कितनी ही हो, मैं यह काम नहीं कर सकता । यह तो आपका विशेषाधिकार होना चाहिए । आपको स्कूलों और कालेजों में जो शिक्षा मिली है

उसकी यह कसौटी है। आपकी योग्यता आपके श्रद्धा अंग्रेजी में भाषणों में नहीं आजी जाएगी, आपकी योग्यता इस बात में आजी जाएगी कि आप गरीबों की वित्तनी सेवा करते हैं, न कि सात अथवा छह सौ रुपये की आपकी सरकारी नौकरी से। मैं चाहता हूँ कि आप इस काम को उसी भावना से करें जिसमें मैं आपसे कह रहा हूँ। मुझे ऐसा एक भी विद्यार्थी नहीं मिला जिसने यह कहा हो कि वह प्रतिदिन एक घंटा नहीं निकाल सकता। यदि आप हर रोज अपनी दैनन्दिनी लिखें तो आप देखेंगे कि आप साल के 365 दिनों में से बहुत-से अमूल्य घंटे व्यर्थ गवा देते हैं। यदि आप अपनी शिक्षा का सदुपयोग करना चाहते हैं तो आप इस काम की ओर ध्यान देंगे।—यह काम कठिन तो है पर आनन्ददायक है। इससे आपको अपने क्रिकेट अथवा टेनिस के खेलों से ज्यादा आनन्द मिलेगा।——मैं आपसे यह कहूँगा कि आप अपने खाली समय के कुछ घंटे हरिजन सेवा में लगाने की प्रतिज्ञा करें।

सभी सच्चे वालचरो को मेरा आशीर्वाद प्राप्त है। मैं विश्व के विभिन्न भागों में अपनी यात्राओं के दौरान हजारों वालचरो के सम्पर्क में आया हूँ। सच्चे वालचर वीर, समझदार, शिष्ट तथा बुद्धिमान होते हैं। उन्हें अपने कर्तव्य का पूरा भान होना चाहिए। वे देश के अन्दर अनेक मेलों में, जहाँ लाखों-कराड़ों व्यक्ति एकत्र होते हैं, व्यवस्था रखने का काम करते हैं। मैं उनसे भी यही चाहूँगा कि वे अपने समय का कुछ अंश हरिजनों की सेवा के लिए दें। जो भी व्यक्ति हरिजन वस्तियों को मेरी निगाह से देखेगा उसे इस बात का विश्वास हो जाएगा कि उन सब लोगों के लिए सेवा करने की यथेष्ट गुंजाइश है जिनमें सेवा करने की इच्छा तथा क्षमता है। इसके लिए अमाधारण बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है केवल हरिजनों को अपने जैसा समझने की भावना की।

मैंने प्रायः विद्यार्थियों की हड़ताल के विरुद्ध लिखा है। उन्हें केवल तभी हड़ताल करनी चाहिए जब कोई और चारा न हो। मैं विद्यार्थियों द्वारा राजनीतिक प्रदर्शन तथा दलगत राजनीति में भाग लेने को विल्कुल गलत समझता हूँ। इससे गम्भीर अध्ययन में बाधा पड़ती है और विद्यार्थीगण भावी नागरिक के रूप में ठोस काम करने के लायक नहीं रह जाते।

मेरा विद्यार्थियों पर और विद्यार्थियों का मुझ पर विशेष अधिकार है क्योंकि मैं अपने को अभी भी एक विद्यार्थी मानता हूँ और दूसरे यह कि मैं भारत लौटने के

समय से ही उनके निकट सम्पर्क में रहा हूँ और उनमें से बहुतों ने सत्याग्रह के लिए काम किया है। अतः यदि सारा विद्यार्थी समाज भी किन्हीं अस्थायी कारणों से मेरा विरोध करे तो भी मैं इस डर से सलाह देना बन्द नहीं करूँगा कि मेरी सलाह नहीं मानी जाएगी।

दलगत राजनीति में पड़ना विद्यार्थियों के हित में नहीं है। वे सब दलों की बातें सुन सकते हैं जैसे कि वे सब तरह की किताबें पढ़ते हैं, लेकिन उनका काम है उन सब बातों में निहित सत्य को ग्रहण कर लेना और बाकी चीजों को छोड़ देना। यही एकमात्र सही दृष्टिकोण है जो उन्हें अपनाना चाहिए। विद्यार्थी समाज को दलगत राजनीति से बिल्कुल अछूता रहना चाहिए। ज्योंही विद्यार्थी इस तरह के काम में पड़ते हैं वे विद्यार्थी नहीं रह जाते और इसलिए वे सकट के समय देश की सेवा न कर सकेंगे। मेरी सलाह वे सहज न ठुकराए वरना वे अपना नुकसान करेंगे।

प्रश्न—जब भारत स्वराज प्राप्त कर लेगा तब शिक्षा के सम्बन्ध में आपका क्या लक्ष्य होगा ?

उत्तर—चरित्र-निर्माण। मैं साहस, शक्ति, सदाचार, महान लक्ष्यों में अपने को लगा देने की क्षमता को विकसित करने का प्रयास करूँगा। यह साक्षरता से ज्यादा महत्वपूर्ण है, किताबी शिक्षा इस महान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केवल एक साधन है।

7 व्यक्ति की भलाई के लिए

“जो व्यक्ति अपने को खो देता है वह ईश्वर को पा लेता है ।” यदि हम इस बात के महत्व को समझ ले तो हमें वस्तुतः और कुछ जानने की जरूरत नहीं रहेगी ।
—तब व्यक्ति सब कामों को अपने लिए नहीं बल्कि सबके लिए करेगा ।

इस शक्तिशाली विश्व में मनुष्य का, जिसे एक जीवधारी समझा जाता है कोई महत्व नहीं है । भौतिक रूप से वह एक तुच्छ भुनगा है । लेकिन ईश्वर ने उसे बुद्धि तथा अच्छे और बुरे में भेद करने की शक्ति प्रदान की है । यदि हम इस शक्ति का प्रयोग ईश्वर को जानने में करने हैं तो हम भलाई के पक्ष को प्रबल बनाते हैं । यदि हम इस शक्ति का दुरुपयोग करते हैं तो हम बुराई के उपकरण बन जाते हैं, जिससे हम अभिशाप बन कर इस पृथ्वी को जगड़े-पसाद, रक्तपात, दुःख तथा वेदना से भर देते हैं ।

मेरी तुच्छ राय में यदि हम कोई स्थायी तथा वास्तविक चीज प्राप्त करना चाहते हैं तो उसके लिए पहली अनिवार्य आवश्यकता है निर्भयता की । यह गुण बिना धार्मिक भाव के प्राप्त नहीं किया जा सकता । यदि हम ईश्वर से डरेगे तो मनुष्य से निर्भय हो जाएंगे । यदि हम इस तथ्य को समझ ले कि हमारे अन्दर देवी तत्व है और हम जो कुछ सोचते अथवा करते हैं उसे वह देखता है और हमारी रक्षा करता है तथा हमें सच्चे मार्ग पर ले जाता है तो यह स्पष्ट है कि इस पृथ्वी पर हम ईश्वर को छोड़कर और किसी से नहीं डरेगे ।

आध्यात्मिकता की पहली सीढ़ी है निर्भीकता । कायर लोग कभी धार्मिक नहीं हो सकते ।

हम आध्यात्मिक ज्ञान को अक्सर आध्यात्मिक उपलब्धि समझ बैठते हैं । आध्यात्मिकता का मतलब धार्मिक ग्रंथों का ज्ञान तथा दार्शनिक वाद-विवाद नहीं है ।

इसका सम्बन्ध हृदय की ऐसी शुद्धता से है जिसकी शक्ति असीमित होती है ।

सद्जीवन बिताना हमारा कर्त्तव्य है, इसलिए नहीं कि इससे हमारा भला होगा बल्कि इसलिए कि यह प्रकृति का सनातन तथा अटल नियम है।—— सच्चे तथा नेक काम का अर्थ है नेकी कर और कुएँ में डाल।——नेक काम करने की शक्ति हमें बाहर से नहीं मिलती। वह हमेशा हमारे अन्दर विद्यमान रहती है और उसे हमें उचित साधनों द्वारा विकसित भर करना होता है। सबसे बड़ा नैतिक नियम यह है कि हम मानव जाति की भलाई के लिए निरन्तर काम करते रहे।

यह अधिक अच्छा है कि हमारे शब्दों की वजाय हमारे जीवन से ही हमारा परिचय मिले।——धर्म के प्रचार की जरूरत नहीं होती। जरूरत होती है उसके आचरण की, और तब उसका प्रचार आपसे आप होता है।

अक्सर बुराई से भलाई निकलती है। लेकिन वह ईश्वर का विधान है, मनुष्य का नहीं। मनुष्य तो यह जानता है कि बुराई से केवल बुराई ही पैदा हो सकती है जैसे भलाई से भलाई पैदा होती है।

यदि आप केवल भलाई के बदले भलाई करते हैं, तो वह लेन-देन हुआ, इसमें कोई खूबी नहीं। पर यदि आप बुराई के बदले भलाई करते हैं तो तब वह एक कल्याणकारी शक्ति बन जाती है। उसके आगे बुराई समाप्त हो जाती है और वर्ष की गेंद की भाँति उसका आकार तथा गति इतनी बढ जाती है कि उसका प्रति-रोध नहीं किया जा सकता।

कोई भी त्याग तब तक सच्चा त्याग नहीं है जब तक कि उसे खुशी से न किया जाए। त्याग और उतरा हुआ चेहरा इन दोनों का कभी मेल नहीं बैठता। त्याग का अर्थ है 'पवित्र बनाना'। जिस व्यक्ति को अपने त्याग के लिए प्रशंसा की आवश्यकता होती है वह बहुत घटिया आदमी है। ऐसा त्याग चल नहीं सकता।

किसी काम को करने में जो सघर्ष, प्रयास तथा कष्ट सहन करना पड़ता है, आनन्द उसमें है न कि सफलता में। क्योंकि सफलता तो इस तरह के प्रयास में निहित होती है।

मनुष्य अपने विचारों की ही उपज है, जैसे उसके विचार होते हैं वैसा ही वह बन जाता है।

प्रसन्नता एक मनोदशा है, और जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं एक युग से भी ज्यादा समय से कठोर जीवन का आदी होने के कारण अपनी प्रसन्नता को अपनी

चारो ओर की परिस्थितियों से अप्रभावित रखना सीखा गया है ।

मनुष्य जिस हृद तक दूसरे मनुष्यों की भलाई करता है ठीक उसी हृद तक वह बड़ा बन जाता है ।

जो काम सहज भाव से तथा आनन्दपूर्वक किया जाता है वह कभी कष्टदायक नहीं होता ।

यदि कोई मनुष्य अपने काम में लीन हो जाए तो काम उसे भार नहीं लगेगा, उससे वह कभी नहीं थकेगा । पर यदि उसमें रुचि नहीं तो थोड़ा-सा भी काम उसके लिए बहुत ज्यादा हो जाएगा । जेल में एक व्यक्ति के लिए एक दिन एक साल के समान होता है, एक विपत्ती के लिए एक साल एक दिन के समान होता है । पहले जब मैं यूरोपीय संगीत सुनता था तो बहुत जल्द थक जाता था, लेकिन अब मैं उसे कुछ समझता हूँ तथा उसकी सराहना करता हूँ ।

सहज विनम्रता कभी छिपी नहीं रह सकती, फिर भी जिसमें यह होती है, वह उसके आस्तित्व से अनभिज्ञ रहता है ।

प्रश्न—अपने को शून्य बना देने का क्या मतलब है ?

उत्तर—इसका मतलब है अच्छी चीजों को प्राप्त करने में सबसे पीछे रहना, हर एक की सेवा करना, कृतज्ञता की आशा न रखना तथा कष्ट-सहन में सबसे आगे रहना । जो व्यक्ति इस प्रकार अपने को शून्य बना देगा वह हमेशा अपने काम में रमा रहेगा ।

बहादुरी तथा इज्जत के साथ मरने की कला के लिए ईश्वर में जीवन्त विश्वास के सिवा और किसी विशेष शिक्षण की जरूरत नहीं होती ।

मनुष्य और उसका काम, ये दो भिन्न चीजें हैं । जहां अच्छे काम की प्रशंसा तथा बुरे काम की भर्त्सना होनी चाहिए वहां यह भी अपेक्षित है कि उस काम के करने वाले के प्रति, अच्छा हो तो आदर और बुरा हो तो सहानुभूति दिखाई जाए ।

मनुष्य जब तक जीवन के एक क्षेत्र में गलत काम करने में व्यस्त रहता है तब तक वह दूसरे क्षेत्र में सही काम नहीं कर सकता । जीवन एक अविभाज्य पूर्ण इकाई है ।

जब तक कोई व्यक्ति अपने को दूसरे से छोटा अथवा बड़ा समझता रहेगा तब तक कभी समानता नहीं हो सकती । बराबरी के लोगो में बड़प्पन दिखाने के लिए जरा भी गुजाइश नहीं है ।

हमारे विरोधी, जिस ढग से सोचते हैं, जब हम उसी ढग से सोचने लगेंगे तब हम उनके प्रति पूर्ण न्याय कर सकेंगे। मैं जानता हूँ कि इसके लिए तटस्थ भाव की जरूरत है, जिसे प्राप्त करना बहुत कठिन है। फिर भी एक सत्याग्रही के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। यदि हम अपने को अपने विरोधियों की स्थिति में रखें और उनके दृष्टिकोण को समझें तो ससार का तीन-चौथाई कष्ट तथा गलतफहमियाँ दूर हो जाएंगी। तब हम अपने विरोधियों के साथ जल्दी सहमत हो जाएंगे अथवा उनके बारे में उदारतापूर्वक विचार करेंगे।

यह कहना बुरी आदत है कि दूसरे आदमी के विचार बुरे हैं और केवल हमारे विचार अच्छे हैं और जो हमसे भिन्न विचार रखते हैं वे देश के दुश्मन हैं।

उद्देश्य के प्रति अपनी ईमानदारी तथा देशभक्ति की प्रवृत्तियों के लिए अपने लिए हम जिस आदर-सम्मान का दावा करते हैं वही आदर-सम्मान हमें अपने विरोधियों को भी उन्हीं गुणों के कारण देना चाहिए।

यह सच है कि अक्सर लोगो ने मुझे धोखा दिया है और बहुत-से लोग मेरी आशा के अनुकूल नहीं निकले। लेकिन मैं उनको साथ लेने के लिए कभी पश्चाताप नहीं करता क्योंकि जिस तरह मैं सहयोग करना जानता हूँ उसी तरह असहयोग भी करना जानता हूँ। जीवन का सबसे व्यावहारिक तथा सम्मानपूर्ण तरीका यह है कि लोगो पर विश्वास किया जाए जब तक कि ऐसा न करने का आपके पास कोई ठोस कारण न हो।

हमारा ध्येय हमेशा लोगो को शराफत के साथ समझा-बुझाकर तथा उनके दिल और दिमाग को छूकर उनका हृदय-परिवर्तन करना होना चाहिए। इसलिए जो लोग हमसे भिन्न मत रखते हैं उनके साथ हमें हमेशा विनम्रता तथा धैर्य का व्यवहार करना चाहिए। हमें अपने विरोधियों को देश का शत्रु समझने से दृढ़तापूर्वक इनकार कर देना चाहिए।

गलती बुरी चीज है, इसलिए हमें उसके लिए लज्जित होना चाहिए। लेकिन गलती को मानना और उसके लिए क्षमा मागना अच्छी बात है। अतः हमें ऐसा करने में शर्माना नहीं चाहिए। किमी गलती के लिए क्षमायाचना का मतलब होता है फिर गलती न करने का निश्चय। क्या यह निश्चय कोई ऐसी चीज है जिसके लिए शर्मिन्दा हुआ जाए ?

गलती आदमी से ही होती है। हम अपनी गलतियाँ को स्वीकार करके उन्हें, अपने आगे बढ़ने की सीढ़ी बना देते हैं। इसके विपरीत, जो व्यक्ति अपनी गलतियों को छिपाने का प्रयास करता है वह धूल का अवतार बन जाता है और गिरता चला जाता है।

उपयुक्त व्यक्ति के सामने गलती को स्वीकार करना और माय-माय उसे फिर से न करने का वायदा करना सबसे शुद्ध पश्चाताप है।

गलती की स्वीकारोक्ति एक झाड़ की तरह है जो धूल को झाड़ कर मतलब को पहले से ज्यादा माफ कर देती है। दुनिया के ममल झूठा दिखाई पड़ना, अपने प्रति झूठा होने की अपेक्षा लाखों-करोड़ों गुना ज्यादा अच्छा है।

गलतियों को मानने से इनकार करने से बचकर और कोई अपयश नहीं है।

जो व्यक्ति मानवता की सेवा करने का दावा करता है उसका यह कर्तव्य है कि वह उन लोगों से नाराज न हो जिनकी वह सेवा कर रहा है।

पूर्ण अनामक्तियुक्त उत्कट लगन सब सफलताओं की कुजी है।

यदि आपको लड़ना ही है तो सत्य के मार्ग पर लड़िए और तब ईश्वर आपसे माय होगा। मैं फिर से कहता हूँ कि अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए आत्मशुद्धि तथा कष्ट-महन के सिवा और कोई मार्ग नहीं है।

लेकिन आत्मनियंत्रण से व्यक्ति में स्फूर्ति आनी चाहिए। जब उससे व्यक्ति घबड़ा जाता है अथवा दुखी हो जाता है तो वह मशीन-जैसा अथवा ऊपर से लादा गया बन जाता है।

मनुष्य हमेशा अपूर्ण रहेगा, और उसे हमेशा पूर्ण बनने का प्रयास करने रहना होगा।

सभी मत्त—सिर्फ मत्त विचार ही नहीं, बल्कि मत्त चेहरे, सच्ची तस्वीरें अथवा सच्चे गीत बहुत सुन्दर होते हैं। आमतौर पर लोग सत्य में सौन्दर्य का दर्शन नहीं कर पाते, साधारण व्यक्ति उसमें दूर भाग जाता है और उसमें व्याप्त सौन्दर्य को नहीं देख पाता। जब लोग सत्य में सौन्दर्य का दर्शन करने लगेंगे तब मत्त कला का आविर्भाव होगा।

वास्तविक सौन्दर्य की कृतियाँ सभी सम्भव होती हैं जब सही दृष्टि से कार्य किया जाता है। यदि ऐसे क्षण जीवन में बहुत कम आते हैं तो वे कला में भी बहुत कम दिखाई देते हैं।

मैं सत्य की बार-बार रट लगाता हूँ जिससे कि यह दिमाग से छनकर हृदय तक पहुँच जाए। जब तक वह केवल दिमाग में रहता है तब तक भार बना रहता है। कोई भी सत्य जो दिमाग में आता है उसे तत्काल हृदय तक पहुँचा दिया जाना चाहिए। जब ऐसा नहीं किया जाता तब वह विकृत हो जाता है और दिमाग में एक विषैली वस्तु के समान पड़ा रहता है। जो चीज दिमाग को विपाकृत करती है वह पूरे शरीर को विपाकृत बना देती है। अतः दिमाग को सिर्फ प्रेषक-केन्द्र के रूप में इस्तेमाल करने की आवश्यकता है। जो कुछ दिमाग में पहुँचता है वह या तो तात्कालिक कार्रवाई के लिए हृदय तक प्रेषित कर दिया जाता है अथवा उसे प्रेषण के अनुपयुक्त समझकर तत्काल अस्वीकार कर दिया जाता है। दिमाग द्वारा यह काम ठीक से न करना ही लगभग उन सभी बीमारियों की, जो शरीर में हो जाती हैं, जड़ है और मानसिक थकान का भी यही कारण है।

हममें से बहुत-से लोग ऐसे हैं जो पढ़ते जाते हैं, पढ़ते जाते हैं और इतना पढ़ते हैं कि वे अपनी सोचने-विचारने की शक्ति प्रायः खो बैठते हैं। ऐसे लोगों को मेरी सलाह है कि वे पढ़ना बन्द कर दें और जो कुछ वे पहले पढ़ चुके हैं उसी पर मनन करें।

वासना को जीतना स्त्री या पुरुष का सबसे बड़ा कर्त्तव्य होता है। वासना पर विजय प्राप्त किए बिना मनुष्य अपने ऊपर शासन करने की कभी आशा नहीं कर सकता। और अपने ऊपर शासन के बिना स्वराज अथवा रामराज नहीं आ सकता। अपने ऊपर शासन के बिना और सब पर शासन करना उसी तरह धोखा-भरा तथा निराशाजनक सिद्ध होगा जिस तरह रंगा हुआ मिट्टी का आम जो बाहर से तो देखने में सुन्दर होता है लेकिन अन्दर से खोखला होता है। कोई भी कार्यकर्त्ता, जिसने वासना पर विजय प्राप्त नहीं कर ली है वह हरिजन सेवा, साम्प्रदायिक एकता, खादी, गोरक्षा अथवा ग्राम निर्माण सम्बन्धी कार्यों में कोई वास्तविक योगदान करने की आशा नहीं कर सकता। इस तरह के महान कार्य केवल बौद्धिक ज्ञान द्वारा नहीं किए जा सकते। इनके लिए आध्यात्मिक प्रयास अथवा आत्मशक्ति की जरूरत होती है। आत्मशक्ति केवल ईश्वर की कृपा से प्राप्त होती है और ईश्वर की कृपा उस व्यक्ति पर कभी नहीं होती जो वासना का दास होता है।

अब ब्रह्मचर्य की परिभाषा अथवा अर्थ को लीजिए। उसका मूल अर्थ है

ऐसा आचरण जो मनुष्य को ईश्वर के निकट ला देता है।

इस तरह के आचरण का मतलब है समस्त इन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण। यही इस शब्द का सच्चा तथा उपयुक्त अर्थ है।

आमतौर पर लोग इसका मतलब जननेन्द्रिय पर शारीरिक नियन्त्रणमात्र समझते हैं। इस मकुचित अर्थ ने ब्रह्मचर्य के अर्थ को दूषित कर दिया है और उस का पालन करना असम्भव बना दिया है। सभी इन्द्रियो पर उचित नियन्त्रण के बिना जननेन्द्रिय पर नियन्त्रण असम्भव है। वे सब एक-दूसरे पर आश्रित हैं। निचले धरातल पर मन भी इन्द्रियो के ही अन्तर्गत आता है। मन के नियन्त्रण के बिना केवल शारीरिक नियन्त्रण, चाहे वह अल्पकाल के लिए प्राप्त भी हो जाए, किसी काम का नहीं होता।

ब्रह्मचर्य का मन, वचन तथा कर्म में पालन करना चाहिए। यदि मन को तो इधर-उधर भटकने दिया जाए और शरीर का दमन किया जाए तो वह हानिकारक हो सकता है। मन जहाँ भटकता है शरीर भी देर-सवेर वही पहुँच जाता है।

यहाँ एक भेद समझ लेना आवश्यक है। मन में खराब विचार आ जाना एक बात है, और हमारे प्रयास के बावजूद मन उनमें ही भटकता रहे तो यह विल्कुल भिन्न बात है। यदि हम मन को दुरे विचारों में न भटकने दें तो अन्त में विजय हमारी ही होगी।

पूर्ण त्याग, पूर्ण ब्रह्मचर्य आदर्श स्थिति है। यदि आप ऐसा नहीं कर सकते तो आप अवश्य विवाह कीजिए, लेकिन उसके बाद भी आत्मसंयम बरतिए।

कामेच्छा एक अच्छी चीज है। उसमें गर्माने की कोई बात नहीं है। लेकिन वह केवल सतानोत्पत्ति के लिए है। किसी अन्य प्रयोजन के लिए काम-क्रीड़ा करना ईश्वर तथा मानवता के विरुद्ध एक पाप है।

यदि हम यह मानने लगेंगे कि कामुकता में लिप्त होना आवश्यक है और उसमें कोई हानि तथा पाप नहीं है तो हम उस पर कोई अकुश नहीं लगाएंगे और उसे रोकने में असमर्थ होंगे। और अगर हम यह सीख लेंगे कि इस तरह की लिप्तता हानिकारी, पापमय और अनावश्यक है तथा इसे नियंत्रित किया जा सकता है तब हम देखेंगे कि आत्मनियन्त्रण पूर्णरूप से सम्भव है।

ब्रह्मचर्य के बिना जीवन मुझे सारहीन तथा पशुवत मालूम होता है। पशुओं को स्वभावतः आत्मनियन्त्रण का ज्ञान नहीं होता। मनुष्य इसीलिए मनुष्य है

क्योंकि वह आत्मनियन्त्रण कर सकता है और वह उसी हृद तक मनुष्य है जिस हृद तक वह आत्मनियन्त्रण करता है। मैं पहले समझता था कि हमारे धार्मिक ग्रंथों में ब्रह्मचर्य की आवश्यकता से अधिक प्रशंसा की गई है पर अब मुझे यह पूर्णरूप से उचित तथा अनुभव पर आधारित प्रतीत होती है और यह बात दिन पर दिन अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही है।

मेरा खयाल है कि आध्यात्मिक पूर्णता के लिए मन, वचन तथा कर्म से पूर्ण सयमी होना आवश्यक है। और जिस राष्ट्र में ऐसे लोगों का अभाव होता है वह राष्ट्र उतना ही गरीब होता है।

विवाहित लोगों को विवाह के सच्चे उद्देश्य को समझना चाहिए और मानव जाति को बनाए रखने के निमित्त सत्तानोत्पत्ति के उद्देश्य के बिना और किसी उद्देश्य से ब्रह्मचर्य के नियम को भंग नहीं करना चाहिए।

ऐसा करना कठिन है, लेकिन इस दुनिया में हम इसलिए जन्मे हैं कि हम कठिनाइयों तथा प्रलोभनों से सघर्ष करें और उन पर विजय पाएँ, और जिन व्यक्ति में इस इच्छा का अभाव होता है, वह सच्चे स्वास्थ्य के परम आनन्द को कभी नहीं भोग सकता।

मैंने हमेशा अनुभव किया है कि ब्रह्मचर्य की सकीर्ण परिभाषा से काफी नुकसान हुआ है। यदि हम सब ओर से एक साथ आत्मनियन्त्रण करने का अभ्यास करेंगे तो हमारा प्रयास वैज्ञानिक होगा तथा उसके सफल होने की भी सम्भावना रहेगी। जीभ ही कदाचित् मुख्य अपराधी है।

जीभ पर नियन्त्रण का ब्रह्मचर्य पालन के साथ गहरा सम्बन्ध है। मैंने अनुभव से देखा है कि यदि कोई व्यक्ति स्वाद पर नियन्त्रण प्राप्त कर लेता है तो उसके लिए ब्रह्मचर्य पालन बहुत आसान हो जाता है।

यदि कोई ईमानदार व्यक्ति अपने बीते दिनों की गलतियों को भुलाकर शुद्ध जीवन व्यतीत करने लगता है तो उसे उसका फल तुरन्त मिलता है। जिन लोगों ने थोड़े समय के लिए भी ब्रह्मचर्य का पालन किया है उन्होंने यह देखा होगा कि किस तरह उनके शरीर तथा मन की शक्ति बराबर बढ़ती जाती है, और वे इस निधि को कदापि नहीं खोना चाहेंगे।

मनुष्य इसलिए इस ससार में आया है कि वह उसके प्रति अपने ऋण को अदा कर सके यानी ईश्वर की उसकी सृष्टि के माध्यम से सेवा कर सके। इस

दृष्टि को अपनाकर मनुष्य अपने शरीर के मरक्षण के रूप में काम करता है। और उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपने शरीर की ऐसी देखभाल करे कि उसके जरिए वह अपने सामर्थ्यभर सेवा के आदर्श का पालन कर सके।

यद्यपि जीवन और मृत्यु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और यद्यपि हमें उनकी ही खुशी से मरना चाहिए जितनी खुशी से हम जीते हैं, तथापि जब तक जीवन है तब तक शरीर को उसका उचित महत्व देना आवश्यक है। यह काम हमें ईश्वर ने सौंपा है, और हमें शरीर की उचित देखभाल करनी है।

आप लोगों को शरीर के बारे में, जो उसके अन्दर विद्यमान आत्मा की उन्नति में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, पर्याप्त ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिए। हम उसके प्रति जितनी दुःखद अवहेलना तथा अज्ञानता बरतते हैं उतनी किसी भी चीज के प्रति नहीं बरतते। शरीर को देवालय के रूप में प्रयोग करने के बजाय हम उसे विलासिता के साधन के रूप में प्रयोग करते हैं और विलासिता को बढ़ाने तथा पार्थिव शरीर का दुरुपयोग करने की अपनी कोशिश में हम डॉक्टरों के पास मदद के लिए दौड़ने में भी नहीं शर्माते।

पूर्ण स्वास्थ्य ईश्वरीय नियमों के अनुसार जीवन व्यतीत करके तथा आसुरी शक्ति का विरोध करके ही प्राप्त किया जा सकता है। सच्ची प्रसन्नता मनुष्य के स्वास्थ्य के बिना असम्भव है और सच्चा स्वास्थ्य स्वाद पर कड़े नियंत्रण के बिना असम्भव है। जब स्वाद पर नियंत्रण कर लिया जाता है तब और सब इन्द्रिया आपसे आप नियंत्रण में आ जाती हैं। और जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय पा ली है उसने सचमुच पूरे विश्व पर विजय प्राप्त कर ली है, और वह ईश्वर का एक अंश हो जाता है।

सभी धर्म इस बात पर एकमत हैं कि मानव शरीर में ईश्वर का निवास है। हमारा शरीर हमें इस शर्त पर दिया गया है कि हम उससे ईश्वर की निष्ठापूर्वक सेवा करेंगे। उसे अन्दर तथा बाहर दोनों ओर से पवित्र तथा निष्कल रखना हमारा कर्तव्य है जिससे समय आने पर हम उसे दाता को वैसी ही निर्मल अवस्था में लौटा सकें, जैसी निर्मल अवस्था में वह हमें मिला था। यदि हम इस करार को ईश्वर के मनमुताबिक पूरा करें तो ईश्वर हमें अवश्य पुरस्कृत करेगा और अमरत्व प्रदान करेगा।

वस्तुतः शरीर एक अच्छा सेवक हो सकता है लेकिन जब वह मालिक बन

वैठता है, तब उसकी अनिष्टकारी शक्ति असमीत हो जाती है ।

सभ्यता का वास्तविक अर्थ आवश्यकताओं में वृद्धि नहीं बल्कि ज्ञान-वृद्धकर स्वेच्छापूर्वक उन पर नियंत्रण करना है । इससे ही सच्ची प्रसन्नता तथा सन्तोष प्राप्त होता है तथा सेवा करने की शक्ति में भी वृद्धि होती है ।

एक निश्चित सीमा तक शारीरिक सुख-सुविधा तथा आराम आवश्यक है लेकिन उसके बाद उससे मदद मिलने के बजाय बाधा पहुँचने लगती है । इसलिए अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाते जाना तथा उन्हें पूरी करने की चेष्टा एक प्रवचना मात्र है । व्यक्ति को अपनी शारीरिक तथा बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति एक निश्चित हद तक ही करनी चाहिए । यदि ऐसा नहीं होगा तो वे शारीरिक और बौद्धिक विलासिता का रूप ग्रहण कर लेगी । मनुष्य को अपनी भौतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों को इस तरह व्यवस्थित करना चाहिए कि उनकी वजह से उसकी मानवता की सेवा में, जिसमें उसकी सारी शक्ति लगनी चाहिए बाधा न पड़े ।

जैसे ही मनुष्य अपनी दैनिक आवश्यकताओं को बढ़ाना चाहता है वैसे ही वह 'सादा जीवन और उच्च विचार' के आदर्श से च्युत हो जाता है । इतिहास इस बात को अच्छी तरह साबित करता है । मनुष्य की खुशी वास्तव में सतोष में है । जो मनुष्य असन्तुष्ट रहता है उसके पास चाहे कितना ही अधिक धन हो, वह अपनी इच्छाओं का दास हो जाता है । और अपनी इच्छाओं का दास होने से बढ़कर और कोई दासता नहीं है । सभी साधु-संतों ने स्पष्ट रूप से यह बात कही है कि मनुष्य स्वयं अपना सबसे बड़ा शत्रु तथा सबसे बड़ा मित्र हो सकता है । आजाद अथवा गुलाम होना स्वयं उसके हाथों में है । और जो बात व्यक्ति के लिए सही है वही समाज के लिए भी सही है ।

अनुभव से मैंने यह सीखा है कि सत्यव्रती के लिए मौन आध्यात्मिक अनुशासन का एक अंग है । जाने-अनजाने सत्य को बढ़ा-चढ़ाकर कहने, उसे छिपाने अथवा तोड़ने-मरोड़ने की प्रवृत्ति मनुष्य की नैसर्गिक कमजोरी है, और इस पर विजय पाने के लिए मौन आवश्यक है ।

मितभाषी बिना सोचे-विचारे कोई बात नहीं कहेगा, वह हर शब्द को नाप-तौलकर अपने मुख से निकालेगा ।

अब यह (मौन) मेरे लिए शारीरिक तथा आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से

आवश्यक हो गया है । आरम्भ में मैंने इसे इसलिए अपनाया था जिससे काम का बोझ कम मालूम हो । उसके बाद लेखनकार्य के लिए मुझे और समय चाहिए था । कुछ समय तक उसका अभ्यास कर लेने के बाद मुझे उसका आध्यात्मिक महत्व ज्ञात होने लगा । अचानक मेरे दिमाग में यह बात कौंध-सी गई कि वही समय ऐसा होता है जबकि मैं अपने को ईश्वर के सबसे अधिक निकट पा सकता हूँ । और अब मैं अनुभव करता हूँ कि मानो मैं स्वाभाविक रूप से मौन धारण के लिए ही बना था ।

वही व्यक्ति सचमुच मौन रहता है, जो बोलने की क्षमता रखते हुए भी एक भी बेकार शब्द नहीं बोलता ।

8 मानव परिवार

मैं भारत का एक विनम्र सेवक हूँ और भारत की सेवा के द्वारा सम्पूर्ण मानवता की सेवा कर रहा हूँ—लगभग पचास साल तक सार्वजनिक जीवन व्यतीत करने के बाद आज मैं यह कह सकता हूँ कि मेरा विश्वास इस सिद्धांत में बढ़ा है कि अपने राष्ट्र की सेवा विश्व की सेवा से भिन्न नहीं है। यह एक अच्छा सिद्धान्त है। इसे स्वीकार करने से ही विश्व की स्थिति सुधर सकती है और हमारी इस पृथ्वी पर स्थित राष्ट्रों के पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष समाप्त हो सकते हैं।

ईश्वर ने मेरे भाग्य को भारत के लोगों के साथ जोड़ दिया है, अतः यदि मैं उनकी सेवा नहीं करता तो मैं अपने निर्माता से दगावाजी करूँगा। यदि मैं उनकी सेवा करना नहीं सीखता तो मानवता की सेवा मुझसे कभी नहीं बन पड़ेगी, जब तक मैं अपने राष्ट्र की सेवा करने में दूसरे देशों को हानि नहीं पहुँचाता, तब तक मैं कोई गलती नहीं कर सकता।

किसी भी व्यक्ति के लिए देशप्रेमी हुए बिना विश्वप्रेमी होना असम्भव है। अन्तर्राष्ट्रीयता तभी सम्भव है जब राष्ट्रीयता यथार्थ बन जाए अर्थात् जब विभिन्न देशों के लोग अपने को संगठित कर लें और पूरी एकता के साथ काम करने के योग्य हो जाए।

राष्ट्रीयता बुरी चीज नहीं है, बुरी चीज है सकीर्णता, स्वार्थ, अलगाव, जो आधुनिक राष्ट्रों का सबसे बड़ा कलक है। हर राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को नुकसान पहुँचाकर अपना फायदा करना चाहता है, दूसरे की बरबादी करके अपनी उन्नति करना चाहता है। भारतीय राष्ट्रीयता ने भिन्न मार्ग अपनाया है। भारत सम्पूर्ण मानवता की भलाई तथा सेवा के लिए अपने को संगठित करना चाहता है तथा आत्मोन्नति चाहता है।

मेरा उद्देश्य केवल भारतीयों में ही भ्रातृत्व की भावना पैदा करना नहीं है। मेरा उद्देश्य केवल भारत की स्वतन्त्रता नहीं है यद्यपि मेरा लगभग सारा जीवन तथा समय निःसन्देह उसी में लगा है। लेकिन भारत की स्वतन्त्रता के जरिए

मैं विश्ववधुत्व को उद्देश्य को प्राप्त करने की आशा करता हूँ। मेरी देशभक्ति सकुचित नहीं है। वह अपने अन्दर सबको शामिल करती है और मैं उम देशभक्ति को अस्वीकार करता हूँ जो हमारे राष्ट्रों के कष्टों तथा शोषण के जरिए पनपना चाहती है। उम देशभक्ति का मेरे लिए कोई महत्व नहीं है जिसका सम्पूर्ण मानवता की अधिकतम भलाई के साथ हमेशा, विना किसी अपवाद के, हर मामले में, मेल नहीं बैठता। यही नहीं, बल्कि मेरा धर्म तथा मेरे धर्म से उद्भूत देशभक्ति सभी जीवों के लिए है।

पूर्ण स्वराज से मेरा मतलब औरों में पृथक् स्वतंत्रता से नहीं है बल्कि स्वस्थ तथा सम्मानित परस्पर निर्भरता से है। यद्यपि मेरा राष्ट्रप्रेम प्रचण्ड है तथापि वह सकीर्ण नहीं है तथा उसका उद्देश्य किसी राष्ट्र अथवा व्यक्ति को हानि पहुंचाना नहीं है। कानूनी सिद्धान्त कानून पर उतने आधारित नहीं होते जितने नैतिकता पर। मैं इस शाश्वत सत्य में विश्वास करता हूँ कि अपनी सम्पत्ति का इस तरह इस्तेमाल करो कि जिससे पड़ोसी की सम्पत्ति को क्षति न पहुंचे।

हमारे राष्ट्रप्रेम से दूसरे राष्ट्रों को खतरा नहीं हो सकता क्योंकि जिम तरह हम किसी को अपना शोषण नहीं करने देंगे उसी तरह हम भी किसी का शोषण नहीं करेंगे। स्वराज के जरिए हम पूरे विश्व की सेवा करेंगे।

राज्यनिर्मित सीमाओं के पार अपने पड़ोसियों की सेवाएँ करने की कोई सीमा नहीं है। ईश्वर ने उन सीमाओं को कभी नहीं बनाया।

हम अपने देश की स्वतंत्रता चाहते हैं पर दूसरों का शोषण करके अथवा दूसरे देशों को नीचे गिरा कर नहीं। मुझे भारत की ऐसी स्वतंत्रता नहीं चाहिए जिससे इंग्लैंड का अथवा अंग्रेजों का विनाश हो। मैं अपने देश की स्वतंत्रता इसलिए चाहता हूँ जिससे दूसरे देश मेरे स्वतंत्र देश से कुछ सीख सके, जिनसे मेरे देश के साधनों का मानवता की भलाई के लिए उपयोग किया जा सके। जैसे राष्ट्रीयता का सिद्धांत आज हमें यह सिखाता है कि व्यक्ति को कुटुम्ब के लिए, कुटुम्ब को गाँव के लिए, गाँव को जिले के लिए, जिले को प्रान्त के लिए तथा प्रान्त को देश के लिए बलि देनी पड़ती है, वैसे ही किसी देश को इसलिए स्वतंत्र होना चाहिए कि वह आवश्यकता पड़ने पर ससार की भलाई के लिए अपनी बलि दे सके।

अतः राष्ट्रीयता का मेरा आदर्श यह है कि मेरा देश प्राणोत्सर्ग कर सके जिससे मानव जाति जीवित रह सके। उसमें जाति-द्वेष के लिए स्थान नहीं है। हमारी राष्ट्रीयता ऐसी ही होनी चाहिए।

हम सब उसी मिट्टी से बने हैं, हम सब विशाल मानव परिवार के सदस्य हैं। मैं उनमें कोई भेद करने को तैयार नहीं हूँ। मैं भारतीयों के दूसरों से अच्छा होने का दावा नहीं करता। हम लोगो में समान गुण-अवगुण हैं। विश्व के लोग बिल्कुल ऐसे अलग-अलग नहीं कटे हैं कि हम लोग एक-दूसरे के पास नहीं जा सकते। चाहे वे हजार कमरों में रहते हों लेकिन वे सब एक-दूसरे से जुड़े हैं। मैं यह नहीं कहूँगा कि “भारत सबसे ऊँचा बना रहे चाहे सारा ससार नष्ट हो जाए।” यह मेरा सदेश नहीं है। भारत पूरी तरह फले-फूले पर उससे ससार के दूसरे राष्ट्रों की भी भलाई हो। मैं भारत को तथा उसकी स्वतन्त्रता को तभी अक्षुण्ण रख सकता हूँ जब मेरे दिल में सम्पूर्ण मानव जाति के प्रति सौहार्द होगा, न कि केवल उन लोगों के लिए जो पृथ्वी के इस छोटे-से हिस्से में निवास करते हैं जिसे भारत के नाम से पुकारा जाता है। भारत दूसरे छोटे देशों के मुकाबले काफी बड़ा है लेकिन इस लम्बे-चौड़े विश्व में अथवा ब्रह्माण्ड में वह क्या है?

मैं पूर्ण विनम्रता के साथ निवेदन करता हूँ कि यदि भारत सत्य तथा अहिंसा के जरिए अपने लक्ष्य तक पहुँचता है तो वह विश्वशांति में काफी बड़ा योगदान करेगा, जिसके लिए आज पृथ्वी के समस्त राष्ट्र लालायित हैं और उस दशा में वह उस मदद का कुछ थोड़ा-सा बदला भी चुका सकेगा जो उसे उन राष्ट्रों से मुफ्त मिलती रही है।

यदि मैं अपने देश के लिए स्वतन्त्रता चाहता हूँ तो विश्वास कीजिए कि मैं इसलिए नहीं चाहता कि मैं, जो ऐसे राष्ट्र का सदस्य हूँ जिसकी आबादी मानव जाति की आबादी का पाँचवाँ हिस्सा है, पृथ्वी की किसी अन्य जाति का अथवा किसी एक भी व्यक्ति का शोषण कर सकूँ। यदि मैं अपने देश के लिए स्वतन्त्रता चाहता हूँ तो मैं उसके योग्य तभी होऊँगा जब मैं यह स्वीकार करूँ कि हर दूसरी जाति को, चाहे वह निर्बल हो या बलवान, स्वतन्त्रता का वैसा ही समान अधिकार है।

सहायक सामग्री

प्रस्तुत पुस्तक की सामग्री सकलित करने में निम्न ग्रन्थों से महायता ली गई है ।

‘दी माईड ऑफ महात्मा गांधी’, आर० क० प्रभु० और यू० आर० राव ।

‘सेलेक्शन्स फ्रॉम गांधी’, निर्मल कुमार बोस तथा ‘गांधी सीरीज’, आनन्द टी० हिंगोरानी ।

‘अमृत बाजार पत्रिका’ ।

‘आत्मकथा अथवा सत्य के प्रयोग’, एम० के० गांधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘बाम्बे क्रोनिकल’, बम्बई ।

‘बापूज लैटर्स टु मीरा’, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘कन्स्ट्रक्टिव प्रोग्राम इट्म मीनिंग एण्ड प्लेस’, एम०के० गांधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘देहली डायरी’, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘दि एपिक फास्ट’, प्यारेलाल, मोहनलाल भट्ट, अहमदाबाद ।

‘एथिकल रिलिजन’, महात्मा गांधी, एम० गणेशन, मद्रास ।

‘फ्रॉम यरवदा मन्दिर आश्रम ओवरजर्वेसिम’, एम० के० गांधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘ए गाइड टु हैलथ’, महात्मा गांधी, एस० गणेशन, मद्रास ।

‘गांधीजी इन इण्डियन विलेजेस’, महादेव देसाई, एम० गणेशन, ट्रिपलीकेन, मद्रास, 1927 ।

‘हरिजन’, महात्मा गांधी द्वारा 1933 में स्थापित अंग्रेजी साप्ताहिक ।

‘हिन्द स्वराज ऑर इण्डियन होम रूल’, महात्मा गांधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘इंडियाज केस फॉर स्वराज’, सम्पादक डब्ल्यू० पी० कवाडी, यशानन्द एण्ड को०, बम्बई ।

‘की टू हैल्थ’, एम० के० गाधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘लेनिन एण्ड गाधी’, रेनि टुलोप-मिलर-पुटनाम, लंदन, 1930 ।

‘माई डियर चाइल्ड (लेटर्स टु एस्थर फेयरिंग)’, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘डायरी ऑफ महादेव देसाई’, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘महात्मा लाईफ ऑफ मोहनदास करमचन्द गाधी’, डी० जी० टेडुलकर, 8 खण्ड, टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन ।

‘महात्मा गाधी दी लास्ट फेज’, प्यारेलाल, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘एम० के० गाधी ऐन इण्डियन पेट्रियट इन साउथ अफ्रीका’, जे०जे० डोक, दी लंडन इण्डियन क्रानिकल, लंडन, 1909 तथा प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 1967 ।

‘माई पिक्चर ऑफ फ्री इण्डिया’, एम० के० गाधी, सम्पादक आनन्द टी० हिगोरानी ।

‘दी माडर्न रिव्यू’, कलकत्ता ।

‘मि० गाधी, दी मैन’, मिल्ली ग्राहम पोलक ।

‘रिपोर्ट ऑफ दी कमीशन एक्वाइटेड वार्ड दी पंजाब सब-कमेटी ऑफ दी इण्डियन नेशनल कांग्रेस’, प्रकाशक के० सन्थानम, लाहौर, 1920 ।

‘सिलेक्टेड लेटर्स I’, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘सत्याग्रह इन साउथ अफ्रीका’, एम० के० गाधी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘स्पीचेज एण्ड राईटिंग्स ऑफ महात्मा गाधी’, जी० ए० नटेशन एण्ड को०, मद्रास ।

‘टुवर्डस न्यू होराइजन्स’, प्यारेलाल, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ।

‘विद गाधीजी इन सीलोन’, सम्पादक महादेव देसाई, एस० गणेशन मद्रास ।

‘यंग इंडिया’, महात्मा गाधी द्वारा सम्पादित अंग्रेजी साप्ताहिक ।

